प्रथम संस्करण

१९६९

मूल्य ४) ५०

मुद्रक

राजश्री प्रिंटर्स

बीकानेर

नृत्य और शिक्षा

लेखक

डा० मुरारी शर्मा

संगीत-विद्या के अनन्य उपासक एवं प्रचारक

परमपूज्य पितामह श्री हापचन्द जी की

पावन स्मृति में

सादर भेंट

प्रस्तावना

स्वतन्त्रता से पूर्व संगीत - शिक्षण की व्यवस्था व्यक्तिगत संगीतशाला के रूप में थी। इस व्यवस्था में शिक्षार्थी गुरुओं से शिक्षा प्राप्त कर कला का आनन्द लेता था। उस समय कोई निश्चित पाठ्यक्रम निर्धारित नहीं था। गुरु और शिष्य की इच्छा के अनुसार ही संगीत का अभ्यास कराया जाता था। वर्षों तक गुरु की सेवा करने वाला विद्यार्थी ही इस व्यवस्था से लाभ उठा सकता था।

दूसरी व्यवस्था राज्यों की तरफ से गुनिजन - खानों के रूप में थी। कलाकार राज्य के आश्रित होते थे और उन्हें समय समय पर राजमहलों में होने वाले उत्सव, मांगलिक कार्य आदि आयोजनों में प्रदर्शन करना पड़ता था। राज्य द्वारा ऐसे कलाकारों को आजीविका दी जाती थी। गुनिजन - खानों में ये लोग अपने परिवार के बालकों तथा राज्याश्रय में पलने वाली गायिकाओं एवं नर्तकियों को शिक्षा देते थे। कभी कभी विवाह - शादी के अवसर पर रईसों के यहां भी ऐसे कलाकारों के प्रदर्शन की व्यवस्था की जाती थी। इस समय शिक्षण-व्यवस्था प्रायः पेशेवर कलाकारों तक ही सीमित थी, जिसका उद्देश्य राजा--महाराजाओं या रईसों आदि का मनोरंजन कर के उदर पूर्ति करना था।

इस युग में पं० भातखण्डे एवं विष्णुदिगम्बर पलुस्कर ने विद्यालय के रूप में संगीत - शिक्षण की योजना प्रारम्भ की, जो आज भी भारतीय स्तर पर कार्य कर रही है। इन संस्थाओं द्वारा कुछ शिक्षित कलाकार पैदा हुए, जिन्होंने कला को प्रायोगिक पक्ष के साथ साथ सैद्धान्तिक रूप में भी देखा। इससे सभ्य समाज में संगीत सीखने के प्रति रुचि पैदा हुई।

आधुनिक युग में संगीत–शिक्षण के लिये अधिक से अधिक साधन जुटाए गये हैं। प्रायः सभी प्रान्तों में संगीत शिक्षण - संस्थाओं की स्थापना हो चुकी है। स्थान स्थान पर परीक्षा - केन्द्र खोल कर उपाधियां देने की भी व्यवस्था

है। परन्तु वास्तव में देखा जाए तो इन कला---संस्थाओं का समाज से संबंध नहीं
के बराबर है क्योंकि ये संस्थाएँ समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक
सिद्ध नहीं हो रही हैं। इसी कारण कलाकारों की आर्थिक दशा भी संतोषजनक
नहीं है और उनकी वर्षों की साधना सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में अस-
फल प्रतीत होती है। कलाकार और समाज का मधुर संबंध बनाने के लिये यह
आवश्यक है कि कलाकार अपने विषय के साथ साथ समाज की आवश्यकताओं
को भी समझे।

संगीत की वर्तमान शिक्षा व परीक्षा - व्यवस्था समाज के साथ
घनिष्ठ संबंध बनाने के लिये पूर्ण नहीं है। अतः आज के कलाकारों एवं कला
शिक्षकों को बहुत सोच समझ कर कार्य करना है तभी इस क्षेत्र में उन्नति संभव
है। यह पुस्तक इसी उद्देश्य को दृष्टि में रख कर लिखी गई है। इसमें नृत्य और
शिक्षा का वैज्ञानिक ढंग से पारस्परिक संबंध दिखलाया गया है। अतः यह पुस्तक
हमारे विद्यालयों के लिये आवश्यक ही लाभदायक होगी, ऐसी आशा की जाती है।

इस पुस्तक को लिखने में मुझे अपने पूज्य पिता डॉ॰ जयचन्द्र जी-
शर्मा (निदेशक, श्री संगीत भारती, बीकानेर) से प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्राप्त हुआ
है। इसके अतिरिक्त मैं डॉ॰ मनोहर जी शर्मा (सम्पादक,- वरदा, बिसाऊ, राज-
स्थान) के सत्परामर्श से भी लाभान्वित हुआ हूं, जिसके लिए हृदय से आभार
स्वीकार किया जाता है।

मुरारी शर्मा

श्री संगीत भारती, बीकानेर
दीपावली १९६९

नृत्य और शिक्षा

अनुक्रम

१. नृत्य और शिक्षा

२. मूल-प्रवृत्तियां

३. स्नायु-संस्थान

४. नृत्य-शिक्षा के सिद्धान्त

५. वैज्ञानिक नृत्य शिक्षण पद्धति

६. शिक्षा में नृत्य विषय का सह-सम्बंध

७. शिक्षाप्रद-नृत्यनाटिकाएं

नृत्य और शिक्षा

मधुर ध्वनि हृदय की वस्तु है, जिससे प्राणी को आनन्द प्राप्त होता है, भले ही यह ध्वनि संगीत के स्वरों से उत्पन्न हुई हो या नृत्य के तत्कार द्वारा । व्यक्ति इस संसार में रह कर आनन्द की खोज में कई प्रकार की चेष्टाएं करता है । उनमें एक चेष्टा नृत्य भी है । जिस आनन्द की खोज में मानव दिन रात एक करके उसे प्राप्त करने में लगा है, उस आनन्द का कोई स्वरूप नहीं है, वह तो अलौकिक है । इस अलौकिक आनन्द से व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

हर प्रकार से आनन्द देने वाली नृत्य कला के प्रचार एवं प्रसार द्वारा नृत्यकार अपने उद्देश्य को समझ कर कार्य करे तो इससे सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण हो सकता है ।

साधारणतः नृत्य-शिक्षा को सभी लोग मनोरंजन का ही साधन मानते हैं । नृत्य के आचार्यों ने इसकी शिक्षा को इससे अधिक व्यवस्थित रूप से न रखा और न रखने की आवश्यकता ही समझी । नृत्य शिक्षण के पिछले इतिहास में आज तक जो वातावरण तथा व्यवस्था रही, उसका मूल ध्येय उछल-कूद कर जनसाधारण का मनोरंजन मात्र करना रहा । ऐसी शिक्षण व्यवस्था ने इस कला को समाज से हमेशा पृथक् रखा ।

व्यक्ति और समाज के विकास के लिए शिक्षा का जो महत्व है, उसे वर्तमान शिक्षा शास्त्री अच्छी तरह समझता है, किन्तु नृत्यकला का विद्वान् शिक्षा-सिद्धान्त के महत्व को आज तक नहीं समझ सका है । शिक्षा के क्षेत्र में दिन प्रति दिन नए-नए प्रयोग किये जा रहे हैं और उनका विस्तार भी उसी गति से बढ़ता जा रहा है । नृत्य विषय को शिक्षा के साथ रख कर इस कला को विस्तृत करने का जो

अवसर शिक्षा-शास्त्रियों ने दिया है, उसका लाभ लेने में नृत्य के आचार्य बहुत ही कमजोर पाये जाते हैं । घराना-पद्धति में जकड़े हुए नृत्याचार्य शिक्षा के व्यापक महत्व को समझने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते ।

विद्यार्थी के चहुंमुखी विकास के लिए शिक्षा-मनोविज्ञान को अपनाना होगा । घराने की शिक्षा वर्तमान युग के लिए हर प्रकार से दोषपूर्ण है । इसी कारण शिक्षित समाज अपने बालकों को ऐसे आचार्यों के पास शिक्षण हेतु नहीं भेज रहा है । संगीत एवं नृत्य की शिक्षा-व्यवस्था पुरानी परम्पराओं में जकड़ी हुई है । आज उसमें मौलिकता लाने की अत्यन्त आवश्यकता है । शिक्षा के साथ जब इस विषय को स्थान दिया जा चुका है तो नृत्य के आचार्यों को भी शिक्षा-मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को अपनाना ही होगा । आधुनिक युग में शिक्षण व्यवस्था के लिए यह बहुत ही आवश्यक हो गया है कि शिक्षक जो भी कुछ बालक को सिखाना चाहता है, उस विषय में वह मनोविज्ञान को ध्यान में रख कर ही शिक्षा दे, तभी बालक का सही विकास हो सकेगा । इसके लिए नृत्य-शिक्षक को निम्न बातें ध्यान में रखनी उचित हैं:—

१. शिक्षक अपने विषय की पूर्ण योग्यता रखने वाला हो ।
२. शिक्षक को बालक की पूरी जानकारी होनी चाहिये ।
३. बालक की मानसिक शक्ति एवं रुचि का सदैव ध्यान रखा जावे ।
४. बालक को डांटने-डपटने तथा झिड़कने से उस पर बुरा प्रभाव पड़ता है, अतः उसकी अवनति के कारणों को खोज कर कमजोरी को दूर करना चाहिए ।
५. बालक के घर के वातावरण को भी ध्यान में रखना अति आवश्यक है ।
६. बालक के प्रति शिक्षक सहानुभूति रख कर अपने विषय को सरल एवं सुगम बना कर शिक्षा दें ।
७. वर्तमान संगीत एवं नृत्य प्रणाली में जो प्रचलित दोष हैं, उन्हें दूर कर नवीन प्रयोगों को अपनाना चाहिए ।

नृत्य-शिक्षा का उद्देश्य

आज नृत्य शिक्षा से जन साधारण यह समझता है कि नृत्य द्वारा मनोरंजन मात्र करना है। परन्तु इस बात को गलत रूप से समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है। नृत्य-शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य बालक का नृत्य के माध्यम से मानसिक, शारीरिक तथा बौद्धिक विकास करना है। आज नृत्य के उच्च शिक्षण को चमत्कार पूर्ण परनों एवं विभिन्न लयकारी तक ही बांध कर उसे मनोरंजन का साधन मात्र बना दिया गया है, जबकि भारतीय नृत्यकला मुक्ति, शान्ति तथा मोक्ष देने वाली कला है। नृत्य साधना से उच्च मानवीय तत्व उत्पन्न होते हैं। इनके द्वारा ही मनुष्य को पशु से श्रेष्ठ समझा जाता है।

एक कुशल नर्तक अपनी कला का प्रदर्शन करके आर्थिक संकट से भी मुक्त हो सकता है। कला प्रदर्शन का व्यवसाय संसार के सभी देशों में चलता है। ऐसे कलाकार के सामने आर्थिक संकट उपस्थित नहीं हो सकता। कलाकार भूखों मरते हैं, यह बात उन लोगों पर लागू होती है, जिनकी साधना अधूरी है तथा शिक्षा अपूर्ण रही है। अधूरी शिक्षा और अधूरा ज्ञान व्यक्ति के हर प्रकार के विकास को रोकेगा, चाहे वह किसी भी विषय में क्यों न प्राप्त किया गया हो।

समाज ने साधकों का हर स्थिति में सम्मान किया है। कलाकार का स्थान समाज में बहुत ऊंचा माना गया है। कलाकार ने समय समय पर राष्ट्र-हित एवं समाज-कल्याण में अपना बराबर योग दिया है। उसकी चेष्टाएं बराबर यही रहती हैं कि देश तथा समाज सुखमय हो। समाज के विकास में नृत्यकला पूर्ण सहायक है। इस प्रकार नृत्यकला का सामाजिक मूल्य भी किसी प्रकार कम नहीं है।

नृत्य विश्व की मूक भाषा है। अतः नृत्यकला का आचार्य अपनी शिक्षा के द्वारा विश्व में स्वयं सम्मान प्राप्त करके अपने देश की संस्कृति का प्रचार भी कर सकता है। इस प्रकार मानव-समाज के कल्याण हेतु एक कुशल नृत्यकार विश्वशान्ति का द्वार खोल सकता है।

संगीत एवं नृत्य शिक्षा कठिन क्यों ?

संगीत – विद्या में गायन, वादन तथा नर्तन ये तीनों क्रियाएं आती हैं। परन्तु इन तीनों की शिक्षा ग्रहण करना बहुत कठिन है। संगीत सुनने में बहुत ही मधुर प्रतीत होता है किन्तु उसे सीखना उतना ही कठिन है। गाना सुन कर संगीत

की है। उस साधना को शीघ्रता से किसी छात्र के मस्तिष्क में जमा कर देना आसान काम नहीं है।

आज शिक्षा के क्षेत्र में नये नये सिद्धान्त स्थिर हो रहे हैं, नई नई शिक्षण-पद्धतियां चालू हो रही हैं। मनोवैज्ञानिक आधार पर शिक्षा-क्षेत्र में नित नए प्रयोग किये जा रहे हैं। यदि संगीत एवं नृत्य के क्षेत्र में भी मनोवैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाए तो यह विषय भी सहज ही आनन्ददायक तथा मनोरंजक बन सकता है। संगीत तो स्वयं सम्मोहिनी-विद्या है। फिर इसकी शिक्षण-पद्धति नीरस क्यों ?

वर्तमान युग में सभी शिक्षण-संस्थाओं में संगीत एवं नृत्य के अध्यापक रखे जाते हैं किन्तु उनकी शिक्षण-पद्धति रूढ़िवादी है। अतः बालक शीघ्र ही इस विषय में उदासीन दिखलाई देने लगते हैं। बाल-मन्दिर तथा मॉन्टेसरी स्कूलों में बालकों के लिए अन्य विषयों की पर्याप्त सामग्री शिक्षण के लिए हो सकती है किन्तु संगीत की कक्षा में वहां भी हारमोनियम, तबला, सितार, वायलिन और तानपूरा के सिवाय कुछ नहीं मिलता। उपर्युक्त वाद्य-यंत्रों का उपयोग प्रारंभिक कक्षाओं की आयु के बालकों के लिए बिलकुल बेकार है। इन वाद्य-यंत्रों का सही उपयोग तो उच्च कक्षाओं के लिए होना चाहिए। आज का संगीतज्ञ संगीत-शिक्षा का उद्देश्य स्वयं न समझने के कारण बालकों को शिक्षा देने में असफल सिद्ध होता है। इसी कारण संगीत तथा नृत्य विषय शिक्षा के क्षेत्र में कठिन प्रतीत होते हैं परन्तु मूल रूप में वास्तविक स्थिति ऐसी नहीं है। इस दिशा में सही शिक्षण-पद्धति अपनाने की आवश्यकता है।

मूल–प्रवृत्तियां

मनुष्य में कई प्रकार की प्रवृत्तियां पाई जाती हैं किन्तु उनमें मुख्य प्रवृत्ति दो प्रकार की मानी गई हैं। एक प्रवृत्ति वह है, जो मानव को जन्म से ही प्राप्त होती है तथा दूसरी प्रवृत्ति शिक्षा–अनुभव आदि से आती है, जिसे वह जीवन में परिस्थितियों द्वारा प्राप्त करता है। मूल प्रवृत्तियों को विद्वानों ने तीन भागों में विभाजित किया है:–

१. आत्मरक्षा–इसके अन्तर्गत भूख, क्रोध, आश्चर्य, संचय, घृणा, दुःख तथा विधायकता की प्रवृत्ति आती है।

२. सन्तानोत्पत्ति–इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत काम तथा वात्सल्य आते हैं।

३. सामाजिकता–इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत आत्मगौरव, आत्महीनता, प्रसन्नता तथा एकाकीपन आते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त चौदह प्रकार की मूल प्रवृत्तियों को तीन वर्गों में बांटा गया है। ये प्रवृत्तियां प्रत्येक मानव में समान ही होती हैं। इनके द्वारा संचालित [illegible] में किसी प्रकार का व्यक्तिगत भेद नहीं होता।

मूल प्रवृत्ति तथा अ [illegible] देती है किन्तु इनमें काफी अन
है। आदत में व्यक्ति [illegible] हो [illegible] को ध्रुपद–धमार गाने या सु
की आदत है तो [illegible] भजन को ही सुनने या गा
की आदत हो स [illegible] दूसरे के समान दिख
लाई देते हुए भी [illegible] जबकि मूल प्रवृत्ति
पूरे समाज में [illegible]

आदत; की क्रिया को छोड़ा भी जा सकता है और अपनाया भी जा सकता है, परन्तु मूल-प्रवृत्तियों में परिवर्तन करना साधारण काम नहीं है। मूल-प्रवृत्तियों के साथ संवेग का घनिष्ट सम्बंध जुड़ा हुआ है। बिना संवेग के मूल-प्रवृत्तियों का संचालन नहीं हो सकता। अतः इन प्रवृत्तियों को प्रकट करने में संवेग का महत्व बहुत अधिक है।

उपर्युक्त मूल-प्रवृत्तियों मे जिनका सम्बन्ध नृत्य—शिक्षा से है, उनके विषय में आगे संक्षेप में परिचय दिया जा रहा है।

आत्मरक्षा की प्रवृत्ति

यह प्रवृत्ति मानव तथा पशु में एक समान होती है। भूख की प्रवृत्ति बढ़ने की दशा में पशु अपनी खुराक को शक्ति द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और व्यक्ति उसे बाजार की खरीद से शान्त करता है। समाज ने मनुष्य के लिए ऐसे संशोधन कर दिये हैं कि वह पशु के समान अपना व्यवहार नहीं करता। इसीलिए मनुष्य को बुद्धिशाली माना गया है।

बालक की मूल-प्रवृत्तियां उसके विकास के साथ साथ ठोस रूप धारण कर लेती हैं। ऐसी अवस्था में शिक्षा के द्वारा ही उन्हें विकसित किया जाकर उसे समाज का एक योग्य नागरिक बनाया जा सकता है। कुछ ऐसी मूल-प्रवृत्तियां हैं, जिनका विकास अवस्था के साथ ही होता है। यह प्राकृतिक नियम है। कहने का तात्पर्य यह है कि बालकों को कला-शिक्षा के लिए उन्हें कला सम्बंधी उन्हीं बातों का ज्ञान दिया जावे, जिनके द्वारा बालक के मन एवं शरीर पर अधिक भार न पड़े और वह उसे अपने जीवन की आवश्यक क्रिया समझ कर अपना लेवे।

आत्मरक्षा प्रवृत्ति में संगीत का स्थान

भूख:—कला के माध्यम से व्यक्ति को आर्थिक लाभ है तो वह उसे अपना लेगा। कला का व्यवसाय क्या है? किस प्रकार उसको सीख कर अपने एवं अपने परिवार के आर्थिक ढांचे को सुधारा जा सकता है? इस विषय का बोध कराने पर शिक्षार्थी कला की साधना करने से जी नहीं चुराएगा। आर्थिक लाभ के कई कार्य हो सकते हैं, जैसे—कला-शिक्षक, रेडियो-कलाकार और समीक्षक आदि।

भय:—भय के कारण से व्यक्ति दूर भागता है। इसमें शारीरिक हानि की आशंका है। अतः पशु और मनुष्य दोनों में ही यह प्रवृत्ति समान रूप से पाई जाती है। भय के कारण विद्यार्थी अनुशासन में रह कर कोई अनुचित कार्य नहीं करता। परन्तु भय का रूप

विद्यार्थी पर किसी प्रकार गलत बैठ गया तो वह शिक्षा क्षेत्र से भाग जाएगा। कला के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को आज कई प्रकार के भय हैं, जैसे—अपने परिवार के सदस्यों को शिक्षा देना, अधिक सेवा लेना और समय का दुरुपयोग आदि।

क्रोध:— जब किसी भी व्यक्ति के मन में अनुकूल कार्य नहीं होता है तो उसमें क्रोध उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति का मानसिक—संतुलन बिगड़ जाता है और वह गलत विचारों के अधीन होकर कार्य करने पर उतारू हो जाता है। बालकों को माता—पिता डरा धमका कर या पुचकार कर शान्त करते हैं। क्रोध को शांत करने के लिए उसके कारणों को खोज कर धैर्य से ही काम लिया जाना उचित है। कलाकारों में क्रोध की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में देखी गई है। अपनी साधना की जरा भी हलकी बात सुनने को वे तैयार नहीं। संगीत—शिक्षकों को चाहिए कि वे क्रोध के कारण को खोजें तथा देखें कि शिक्षार्थी न्याय की मांग कर रहा है या नहीं। यदि बिना किसी कारण उसके क्रोध को दबाने की चेष्टा की गई तो वह क्रान्ति का गलत रूप धारण कर लेगा।

आश्चर्य या उत्सुकता:--प्रत्येक बालक हर नई वस्तु के बारे में जानने लिए उत्सुक रहता है। बालक ही नहीं, प्रत्येक व्यक्ति को यह उत्सुकता रहती है कि वह हरेक वस्तु को अच्छी तरह देखे और समझे। यह एक ऐसा आकर्षण है, जो मानव मात्र में पाया जाता है। उत्सुकता के कारण ही रुचि उत्पन्न होती है। अगर इस रुचि को शिक्षा के क्षेत्र में बनाया रख कर बालक पर ध्यान दिया जाए तो वह निश्चित समय में समझाई हुई बात को सरलतापूर्वक ग्रहण कर लेगा। संगीत कला क्षेत्र में शिक्षक अपने विद्यार्थी की उत्सुकता को बात--बात में खत्म ही करते हैं। "तुम्हें जन्म भर संगीत नहीं आ सकता, तुम्हारा स्वर ही ठीक नहीं, तुम लय को क्या जानो" आदि आदि वाक्य निरुत्साहजनक हैं। शिक्षा—सिद्धान्त के अनुसार आज का संगीत—शिक्षक योग्य शिक्षकों की श्रेणी में सही रूप से नहीं आता क्योंकि वह पढ़ाने की विधि का ज्ञाता नहीं है और न उसके सामने ऐसी कोई विधि ही है, जिसे वह अपना लेवे।

संचय:—प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न वस्तुओं को एकत्रित करता है और उन वस्तुओं को हर प्रकार से सुरक्षित रखने का भी ध्यान रखता है। संचय का कार्य बाल्यावस्था से लेकर मृत्युपर्यन्त किसी न किसी रूप में चलता ही रहता है। शिक्षा--क्षेत्र में इस प्रवृत्ति की ओर ध्यान दिया जाए तो बालक का विकास करने में यह पूर्ण सहायक सिद्ध हो सकती है। संचय की प्रवृत्ति उत्तम है

किन्तु इसके लिए दो बातों का ध्यान रखना जरूरी है'—

१. संचय गलत तरीके अर्थात् चोरी अथवा झगड़े आदि से न हो।

२. वस्तु का दुरुपयोग न किया जाए। संचित की गई वस्तु समाज-हित के लिए हो, तभी वह लाभदायक हो सकती है।

विधायकता:—

आप बालक को खेलते हुए देखिए। वह खिलौने तथा मिट्टी एवं लकड़ी आदि को इधर उधर करता ही रहता है। कभी वह घर बनाता है, कभी झोंपड़ी बनाता है। रेल हवाई जहाज आदि जो भी वह चाहे, बनाता है। उसमे बनाने-बिगाड़ने की प्रवृत्ति का संचालन बराबर रहता है। बड़ा होने पर मनुष्य को इस प्रकार बनाने-बिगाड़ने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि उसने ये सब क्रियाएं बचपन में करली हैं। वह तो ऐसी वस्तुओं का निर्माण करता है, जो समाज के व्यावहारिक-जीवन में काम आने वाली सिद्ध हों।

बालक की इस बनाने-बिगाड़ने वाली प्रवृत्ति का शिक्षा-क्षेत्र में काफी उपयोग है। उसकी आदतों की ओर पूरा ध्यान रख कर उससे अच्छी तरह कार्य करवाया जाय तो ऐसा बालक बचपन की सही शिक्षा के कारण उच्चकोटि का इन्जि-नियर आदि भी बन सकता है।

सामान्य प्रवृत्तियां

सामान्य प्रवृत्तियों को हम चार रूपों में पाते हैं, यथा संकेत, अनुकरण, सहानुभूति एवं मेल। इन प्रवृत्तियों में संवेग का अभाव रहता है, जबकि मूल-प्रवृत्तियों में संवेग होते हैं।

१. संकेत.—

संकेत से बालक अपने मन के भावों को समझा देता है। इसमे वह अपने कार्य को करवा लेता है। इसी प्रकार बालक संकेत के कुछ रूप समझ भी लेता है और उसके अनुसार कार्य करता है। संकेत की क्रिया शरीर के विभिन्न अंगों द्वारा प्रदर्शित की जाती है। इनमे आंखों तथा हाथों आदि का संकेत रात दिन के कार्यों में चलता ही रहता है। मानव के दैनिक-जीवन मे इनका बराबर प्रयोग होता रहता है। नृत्यकला में संकेतों का बहुत बड़ा महत्व है। संकेत के कई रूप हैं, जिनमें मुख्य चार हैं।

२. अनुकरण

अनुकरण की क्रिया मनुष्य मात्र में पाई जाती है। नकल करना मनुष्य का स्वभाव है बन्दरों में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है। मनुष्य मे वातावरण को समझने की योग्यता है, अतः वा: इस क्रिया में काफी कुशल है। बालक अपने आसपास के वातावरण को देखता है, सुनता है, और उसी के अनुसार अनुकरण भी करता है।

हमारे सभी कार्य सामाजिक रीति-रिवाज के अनुसार होते हैं। बोलना, कपड़े पहिनना, व्यवहार करना आदि जो कार्य हमने अपना रखें हैं, वे सब अनुकरण के ही कारण हैं। जिस सभ्यता का लोगो ने अनुकरण किया, वे उसी मे ढल चुके। संगीत एव नृत्य-कला की घराना -पद्धति की समुचित शिक्षण व्यवस्था आज अनुकरण पर ही अवस्थित है। शिक्षा के क्षेत्र मे अनुकरण का बहुत महत्व माना गया है। जो कार्य शिक्षक करता है, बालक उसी का अनुकरण करेगा। शिक्षक का कोई शब्द या उच्चारण किसी कारण अशुद्ध होता है तो बालक भी उसको उसी प्रकार ग्रहण करेगा। अत. शिक्षक को बहुत ही सावधानी के साथ शिक्षा देने का कार्य करना चाहिए क्योंकि बालक भली और बुरी दोनों ही बातों का अनुकरण करता है। अध्यापक अपने छात्र ो तभी चरित्रवान बना सकेगा, जब वह स्वय चरित्रवान होगा।

अनुकरण के द्वारा जो भी भली क्रिया होती है, वह स्पर्धा कहलाती है। बुरी क्रिया का रूप ईर्ष्या मे परिवर्तित हो जाता है। यदि बालक मे ईर्ष्या की भावना जागृत हो जाती है तो वह हानि पहुँचाने वाले कार्य करने लगता है। अत शिक्षक को चाहिये कि बालक मे ईर्ष्या की प्रवृत्ति को कभी न पनपने देवे।

आजकल संगीत एव नृत्यकला के विद्यार्थियों मे ईर्ष्या की मात्रा अधिक देखी जाती है क्योंकि उनके कला-गुरु स्वय ईर्ष्या से पूर्ण देखे जाते हैं। यह प्रवृत्ति बढ जाने पर व्यक्ति अपने सहयोगी की अवनति चाहता है और दूसरों की उन्नति उसे असह्य हो जाती है। इससे स्वभाव मे चिडचिडापन उत्पन्न हो जाता है।

सहानुभूति —

यह प्रवृत्ति व्यक्ति मे उस समय उत्पन्न होती है, जब वह दूसरे की अनुभूति मे प्रभावित होता है। प्रत्येक मनुष्य मे इसका वेग एकसा नही होता। ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो दूसरों के दुःख को देख कर प्रसन्न होते हैं। इसके विपरीत ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो दूसरो के दुःख से बहुत ही दुःखी हो जाते हैं। इस प्रकार सहानुभूति की क्रिया किसी

में कम और किसी में अधिक पाई जाती है। शिष्टता के नाते कुछ लोग बनावटी सहानुभूति भी प्रकट करते हैं। इस प्रकार की झूठी सहानुभूति का व्यापार आजकल खूब जोरों से चल रहा है।

सच्ची सहानुभूति तो वह है, जो बालक के चरित्र का निर्माण कर उसके व्यक्तित्व का विकास करे। आजकल संगीत क्षेत्र में कलाकारों के प्रति झूठी सहानुभूति का ही व्यापार अधिक देखा जाता है। सिर्फ झूठी वाहवाही और तालियों की गड़गड़ाहट के सिवाय उसे और कुछ नहीं मिलता।

खेल

शिक्षा में खेल कूद का स्थान महत्वपूर्ण माना गया है। आज के शिक्षा--शास्त्रियों की मान्यता है कि खेलों के द्वारा दी गई शिक्षा बालक अधिक सरलता से ग्रहण करता है। खेल एक ऐसा आकर्षण है, जिसके द्वारा बालक की रुचि पढ़ने में लगाई जा सकती है। विद्वानों का मत है कि बालक में काफी शक्ति है, जिसे वह अपने जीवन में व्यय भी करता है और उत्पन्न भी करता है। आवश्यकता से अधिक शक्ति प्राप्त हो जाने की स्थिति में वह खेल के द्वारा बची हुई शक्ति को निकाल देता है। खेल एक ऐसी क्रिया है, जिसका उद्देश्य खेल के समाप्त होते ही पूरा हो जाता है। खेल समाप्त होने के पश्चात् खिलाड़ी एक प्रकार की मानसिक शान्ति का अनुभव करता है। यह शान्ति उस अवस्था में नहीं मिल सकती जब कि खेल एक व्यवसाय के रूप में खेला गया हो। पेशेवर खिलाड़ियों को इसमें प्रसन्नता नहीं होती क्योंकि उनके द्वारा यह क्रिया दूसरों को प्रसन्न करने के लिये की जाती है। उसमें व्यक्ति का उद्देश्य अपना जीवन निर्वाह करना होता है। खेलों के सम्बन्ध में श्री कार्ल ग्रूसो ने निम्न पांच सिद्धान्त बनाये हैं:--

१. परीक्षात्मक खेल:--इस खेल में बालक वस्तुओं को इधर से उधर रखता है और उनसे परिचय प्राप्त करता है।

२. गतिशील खेल:--इस प्रकार के खेलों से बालक के शरीर का विकास होता है।

३. रचनात्मक खेल:--इन खेलों के द्वारा बालक किसी ने या बिगाड़ने की क्रिया करता है।

४. लड़ाई के खेल:– ऐसे खेल में हार-जीत का प्रश्न रहता है, जिससे शारीरिक शक्ति बढ़ती है।

५. मानसिक खेल – इसमें मस्तिष्क का कार्य अधिक होता है। इसके तीन विभाग माने गए हैं– विचारात्मक, संवेगात्मक और कृत्यात्मक।

नाट्य तथा नृत्यकला का सम्बन्ध संवेगात्मक खेलों से है। इन कलाओं के द्वारा व्यक्ति भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है। संगीत–शिक्षा के लिये संवेगात्मक खेलों का बहुत महत्व है। नाट्य या नृत्यकला के द्वारा प्रमुख कथानक से बालक बहुत कुछ सीखता है। नव रसों की अभिव्यक्ति का मुख्य साधन ये कलाएँ हैं।

विद्यार्थी शाला में सीखने आता है। अगर उस शाला में खेल के साधनों की व्यवस्था है तो बालक प्रसन्नता के साथ अपनी शिक्षा ग्रहण करेगा। शाला में बालक को चरित्रवान, सत्यवादी और आत्मनिर्भर बनाने की शिक्षा दी जाती है। ये सब गुण खेलों द्वारा सिखाये जाने से बालक अच्छी तरह इन्हें ग्रहण कर लेता है। खेलों के द्वारा शिक्षा देना हमारे मनोवैज्ञानिक–सिद्धान्त के पक्ष को मजबूत बनाना है। परन्तु संगीत–शिक्षण की व्यवस्था में ऐसा कोई सिद्धान्त अभी तक लागू नहीं हुआ है, जिससे इस विषय को सरल व सुगम बना कर शिक्षा दी जा सके। इस विषय में विद्वानों को ध्यान देना चाहिए।

चरित्र

मनुष्य का जीवन सम्पर्क या सहवास से बनता है। जन्म से कोई भी व्यक्ति सच्चरित्र या दुश्चरित्र नहीं होता। संगीत का मनुष्य पर भारी प्रभाव पड़ता है। अच्छे व्यक्ति की संगति से बालक उत्तम चरित्र वाला तथा बुरे की संगति से वह दुष्ट प्रवृत्ति वाला बन जाता है। ज्यों-ज्यों बालक की अवस्था का विकास होता है, त्यों त्यों उसके सम्पर्क में नये नये व्यक्ति आते हैं। वह दूसरों की आदतों एवं व्यवहारों को देख कर स्वयं भी वैसा ही बनता जाता है। बालक में व्यवहार को देख कर धीरे धीरे परिवर्तन होते हैं। जब एक प्रवृत्ति उसके मन में पूर्णतया स्थान ग्रहण कर लेती है तो वह भाव का रूप धारण कर लेती है और वह उस प्रवृत्ति का आदी बन जाता है। इस प्रकार स्थायी–भावों के जम जाने पर जो स्थिति उत्पन्न होती है, वह चरित्र कहलाती है। मनुष्य के दैनिक जीवन में परिस्थितियों के कारण परिवर्तन होते रहते हैं, जिनसे मानव

जीवन के सन्मुख एक न एक समस्या उत्पन्न होती रहती है। जिस व्यक्ति में इन समस्याओं को सुगमता से सुलझाने की क्षमता है, वही व्यक्ति चरित्रवान् माना जाता है।

स्थायीभाव

प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर किसी न किसी रूप में स्थायी-भाव हैं, जिनके अनुसार ही वह कार्य करता है। ये स्थायी-भाव किसी भी वस्तु या प्राणी के प्रति उत्पन्न हो सकते हैं। जिनके प्रति स्थायी-भाव उत्पन्न होते हैं, उनके प्रति व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार एक विशेष प्रकार का बन जाता है। हम देखते हैं कि व्यक्ति या वस्तु के प्रति स्थायी-भाव सरलता से बन जाते हैं, जबकि विचार और सिद्धान्त के लिए इनके निर्माण में काफी समय लगता है। शिक्षा के द्वारा बालकों में उन स्थायी-भावों का संगठन किया जाना चाहिये, जो उसको चरित्रवान् बनाने में योग दे सकें।

स्थायीभाव की उत्पत्ति

स्थायी-भाव की उत्पत्ति के लिए दो बातों की आवश्यकता है। प्रथम किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा विचार का बालक को स्पष्ट बोध होना चाहिये कि वह क्या है। दूसरी बात है, संवेगों का संगठन। बालक, ऐन्द्रिय-संवेदन के अधीन है। अतः ज्यों-ज्यों भाव संवेदन का विकास होगा, त्यों त्यों बालक में संवेग की उत्पत्ति प्रारम्भ होगी। धीरे धीरे व्यक्ति, वस्तु तथा विचार के प्रति उसे स्पष्ट बोध होने लगेगा। ऐसी स्थिति में उसके मन में संवेगों का संगठन होकर स्थायी-भाव का रूप धारण कर लेगा।

बालक इन्द्रियों के स्पर्श से वस्तु, व्यक्ति तथा विचार का सरलता से बोध कर लेता है। कुछ ऐसी भी वस्तुएं, विचार तथा व्यक्ति हैं, जिनका उसे बोध कराने पर ही होता है। सत्य का बोध कराने के लिए उसे बताना पड़ता है कि यह सत्य है और यह असत्य। कभी कभी इन भावों का बोध कराने के लिए ऐसे सभी प्रयोग करने पड़ते हैं ताकि उसके मन में सत्य के प्रति स्थायी-भाव की उत्पत्ति हो जाए। शिक्षक को चाहिए कि वह ऐसी विधि अपनाए, जिससे बालक में उत्तम गुण वाले स्थायी-भाव उत्पन्न हों। उसमें दुर्गुण के प्रति स्थायी-भाव किसी कारण या परि-स्थितिवश है तो उसे हटाने के लिए प्रयत्न करना चाहिये, जिससे कि उन बुरे भावों के प्रति बालक के हृदय में घृणा उत्पन्न हो जाए।

आत्मसम्मान-भाव

प्रत्येक व्यक्ति में एक विशेष प्रकार का भाव है, जिसे आत्मसम्मान-भाव कहते है। आत्मसम्मान को ठेस न पहुंचे, इसकी रक्षा प्रत्येक व्यक्ति अपनी बुद्धि के अनुसार करता है। मनुष्य के चरित्र की आधार-शिला यही भाव है। जब बालक को 'स्वयं' का बोध होने लगता है तो उसमें आत्मसम्मान-भाव की उत्पत्ति प्रारम्भ हो जाती है। 'स्वयं' का बोध होने पर वह अपने तथा पराये को भी जानने लगता है। जब उसके मन में 'स्वयं' का भाव दृढ़ हो जाता है तो उसका व्यवहार भी वैसा ही बन जाता है। आत्मसम्मान पैदा होने पर बालक सद्व्यवहार करने लगता है। ऐसी स्थिति में वह भी अपने आपको ईमानदार परिश्रमी तथा सत्यवादी के रूप में समझने लगता है और उसी के अनुसार अपना व्यवहार भी बनाता है। अगर परिस्थिति उसके विपरीत रही और प्रति दिन उसको यह सुनना पड़े कि तुम बदमाश हो, चोर हो, निकम्मे हो तो धीरे धीरे उसके मन में ये विचार घर कर लेंगे और उसके आत्मसम्मान को ठेस लगेगी। फिर वह गलत कार्य करने लगेगा और समाज में एक बुरे बालक के रूप में ही रहना। क्योंकि उसके मन में दूषित भावों ने अपना प्रभाव जमा लिया है। क मन को अच्छा बनाने के लिए यह आवश्यक है कि दूषित भावों को दूर करके उनके स्थान पर उसमें अच्छे स्थायी-भाव जमाए जाएं। स्थायी-भाव के आधार पर ही उसका चरित्र बनता जाता है। आजकल संगीत-क्षेत्र में अच्छे स्थायी-भावों का अभाव है। हम दूसरे कलाकारों के विचारों तथा उनकी कला का भी आदर करना चाहिए। एक कलाकार दूसरे कलाकार को उचित सम्मान दे तथा उसके कार्यों का आदर करे तो सुखद एवं सुन्दर वातावरण बनेगा। कला के स्तर को आगे बढ़ाने के लिए प्रत्येक कलाकार का सम्मान होना चाहिए। इस क्षेत्र में बन्धुत्व के भावों को उत्पन्न करना अति आवश्यक है। अतः संगीत-शिक्षा के उद्देश्यों में इन भावों को भी [illegible]त स्थान देना जरूरी है।

चेतना

मनुष्य की मानसिक-स्थिति का एक रूप चेतना है, जिसे हम सावधानिकता भी कह सकते हैं। चेतना हमारे अन्दर किसी न किसी रूप में सदैव रहती है। निद्रावस्था में भी चेतना हमारे मन में किसी अंश में अवश्य रहती है। इसका प्रवाह बराबर बना रहता है। एक वृत्ति का ध्यान हटने-पश्चात दूसरी वृत्ति बन जाती है। पुनः वही वृत्ति सामने आ जाती है या अन्य परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार इसका प्रवाह लगातार

बना रहता हैं, चाहे हम जागृत अवस्था में हों, चाहे निन्द्रावस्था में। जब एक वृत्ति सामने रहती है तो उसके अन्य सभी भाग पता नहीं कौन से गुप्त स्थान में चले जाते हैं, जिन्हें सामने आई हुई वृत्ति एक दम से मिटा देती है।

मानव का वही व्यवहार दिखलाई देगा जो चेतना के प्रवाह में है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि हमारा व्यवहार चेतना पर ही निर्भर है। संगीत में गायक की जो चेतना है, श्रोताओं की उससे एकदम भिन्न है। गायक अपने व्यवहार द्वारा श्रोताओं को उसी अवस्था में लाने का प्रयास करता है, जिस प्रवाह में वह स्वयं बह रहा है। अगर उस स्थिति में वह श्रोताओं को ला देता है तो वह अपने विषय का महान साधक तथा योगी है।

रुचि

संगीत में रुचि उत्पन्न करने के लिए तथा संगीत–शिक्षा देने के लिए सर्व प्रथम संगीत–शिक्षक अपने गीत या सरगम को गाकर प्रदर्शन करता है। वह अपनी संगीतमय क्रियाओं द्वारा एक ऐसा वातावरण बना देना चाहता है जिससे कि छात्र उसके गीत या सरगम को ग्रहण कर लेवे। विद्यार्थी, जिसे हम सिखाना चाहते हैं, सजीव प्राणी है। सजीव प्राणी के साथ हम मनमाना व्यवहार नहीं कर सकते। हमें उसकी रुचि का पूरा ध्यान रखना पड़ेगा। मान लीजिए कि एक छात्र को हमें शास्त्रीय संगीत या नृत्य का ज्ञान कराना है किन्तु उसकी रुचि सरल या सुगम संगीत अथवा नृत्य की ओर है तो कोई उपाय नहीं कि उत्तेजना के द्वारा वह उसे अपना लेवे। सजीव प्राणी अपने व्यवहार में पूर्णतया स्वतन्त्र है। हम उसे बाहरी उत्तेजना का दास नहीं बना सकते। उसे अपने मन के भीतर से आज्ञा मिलती है, उसी के अनुसार वह व्यवहार करता है। परन्तु समय समय पर जैसी उसे प्रेरणा मिलेगी, उसके व्यवहार में भी परिवर्तन होता रहेगा। इसका यह अर्थ नहीं कि व्यवहार स्वतन्त्र होने के कारण वह बिलकुल ही अनियमित है। ये सब क्रियाएं आत्मा से सम्बन्ध रखती हैं, जिसे हम आत्मगत–नियम के अन्तर्गत मान सकते हैं।

स्नायु-संस्थान

मानव शरीर में कई संस्थान हैं, जो शरीर-वृद्धि के लिये अलग अलग कार्य करते हैं। इनके मुख्य तीन भाग माने गए हैं,(१) वात नाड़ियां, (२) सुषुम्ना और (३) मस्तिष्क।

१. वात नाड़ियां

ये नाड़िया पतले रेशे के समान होती हैं। प्रत्येक नाड़ी के भीतर एक तार सा रहता है। ये नाड़ियां मस्तिष्क तथा सुषुम्ना के सभी भागों में फैली हुई हैं। जो शरीर में समाचार भेजने का कार्य करती हैं। इनका एक कार्य है मस्तिष्क एवं सुषुम्ना को शरीर की खबर देना तथा दूसरा कार्य है उस खबर के अनुसार मस्तिष्क व सुषुम्ना की ओर से आज्ञा देना। इस प्रकार ये नाड़ियां दो प्रकार से कार्य करती हैं।

२. सुषुम्ना

यह नाड़ी रीढ़ की हड्डी के भीतर की नली के निचले भाग अर्थात् कमर से लेकर ऊपर मस्तिष्क तक फैली हुई है। इसका आकार बेलन जैसा होता है और यह रस्सी की भांति है। इसकी लम्बाई डेढ़ फुट होती है। सुषुम्ना के आगे की जड़ के तार भीतर से निकल कर अंगों की तरफ जाते हैं और पिछली जड़ के तार अंगों की तरफ से आकर सुषुम्ना के भीतर आते हैं। इनसे अंगों की खबरें मिलती हैं, जिससे संवेदना का ज्ञान होता है।

मानव शरीर में स्नायु दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार वह है, जो मस्तिष्क को समाचार पहुंचाता है तथा दूसरा प्रकार वह है जो मस्तिष्क को आदेश देता है।

पहले प्रकार को केन्द्रगामी स्नायु कहते हैं तथा दूसरे को केन्द्रत्यागी स्नायु कह गया है ।

३. मस्तिष्क

इसका स्थान खोपड़ी के भीतर होता है, जिसकी रक्षा के लिए तीन झिल्लिय चढ़ी हुई है । स्नायु–संस्थान का मस्तिष्क प्रमुख अंग है । इसके चार भाग हैं,

(१) वृहद्-मास्तिष्क, (२) लघु-मस्तिष्क (३) सेतु (४) सुषुम्ना-शीर्षक

१. वृहद्--मस्तिष्क

यह मस्तिष्क अनेक कार्य करता है । इसका सम्बन्ध संवेदना, विचारशक्ति स्मरणशक्ति, कार्य करने की प्रेरणा आदि से है । इसी मस्तिष्क में बुद्धि का ज्ञान क स्थान है । अतः किसी भी बात को सोचना, समझना, निर्णय लेना आदि विचार पूर क्रियाएं इसी के सहारे चलती हैं । तरह तरह के भाव उत्पन्न होने का केन्द्र भी वृह मस्तिष्क है ।

अगर वृहद–मस्तिष्क में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो जाए या वह नष्ट हो जाए तो प्राणी जीवित रह सकता है किन्तु अपनी इच्छानुसार कार्य करने की शक्ति उसमें नहीं रह जाती । इच्छानुसार कार्य करने के लिये वृहद्–मस्तिष्क की सहायता अपेक्षित है । सिर पर गहरी चोट लगने से वृहद्--मस्तिष्क पर उसका प्रभाव पड़ता है । ऐसी स्थिति में मनुष्य बेहोश हो जाता है अथवा मर भी सकता है ।

विद्वानों का मस्तिष्क बड़ा होता है तथा मूर्खों का मस्तिष्क जन्म से ही छोटा होता है । जो बालक बचपन से ही पढ़ने में अभ्यस्त हैं, उनका दिमाग तेज़ होगा । सोचने–विचारने की क्रियाएं जिनके दिमाक में बराबर चलती रहती हैं, उनसे दिमाग की कसरत होती है । मादक वस्तुओं को ग्रहण करने वाले मनुष्य की बुद्धि धीरे धीरे कम होती जाती है । नशीली वस्तुओं का प्रभाव बड़े मस्तिष्क पर अच्छा नहीं पड़ता ।

उपर्युक्त बातों से हमें वृहद्–मस्तिष्क क्या है, इसका कार्य क्या है, आदि की जानकारी मिली । संगीत विषय सुनने–सुनाने की क्रिया के अन्तर्गत आता है, जो वृहद मस्तिष्क की आज्ञा से होता है । अतः हमें इसकी रक्षा के सभी उपाय करने चाहिये ।

२. लघुमस्तिष्क

यह मस्तिष्क बड़े मस्तिष्क के पीछे होता है। यह बहुत महत्वपूर्ण कार्य करता है। शारीरिक संतुलन को बनाये रखना इसी पर निर्भर करता है। अगर किसी प्रकार का विकार या चोट इसमें आ जावे तो शरीर का संतुलन बिगड़ जाता है। संगीत के लिए छोटे मस्तिष्क का कार्य बहुत ही उपयोगी माना गया है।

३. सेतु

मस्तिष्क का तीसरा भाग सेतु है। दाहिने तरफ से चलकर स्नायु-सूत्र शरीर के बांये भाग की पेशियो तक पहुचते है। इसी प्रकार बांये तरफ से स्नायु-सूत्र शरीर के दाहिने भाग की मास पेशियों तक पहुचते हैं। मस्तिष्क के दाहिने गोलार्ध के भाग मे अगर किसी प्रकार की खराबी हुई तो शरीर के बांये भाग की गति रुक जाती है। इसी प्रकार गोलार्ध के बांये भाग मे खराबी हुई तो शरीर के दाहिने भाग की गति रुक जाती है।

४. सुषुम्नाशीर्षक

शरीर की आवश्यक क्रियाओं का केन्द्र सुषुम्ना-शीर्षक है। यह वह केन्द्र है, जहां रक्त सचार तथा स्वास-क्रिया आदि महत्वपूर्ण कार्य होते हैं। शरीर के सभी स्नायु-सूत्र सुषुम्ना-शीर्षक से होते हुए सुषुम्ना तक जाते हैं। इसी अंग के निचले भाग मे सुषुम्ना शुरु होती है। मस्तिष्क का यह बहुत ही महत्वपूर्ण अंग माना गया है। अगर इस स्थान पर चोट लग जाये तो मृत्यु हो जाती है।

हमारे शरीर का स्वामी मस्तिष्क है। इसकी इच्छा के बिना हम कोई भी कार्य नही कर सकते। हम कहते हैं कि हमारी आंखें देखती हैं, कान सुनते हैं, नाक सूंघता है। परन्तु असल में ऐसा नहीं है। यह सब मस्तिष्क ही करता है क्योंकि मस्तिष्क आंखों के द्वारा देखता है, और कानों के द्वारा सुनता है इसलिये हमारे शरीर का कर्ताधर्ता मस्तिष्क ही है। उसको बहुत सुरक्षित रहने के लिये खोपड़ी के भीतर बड़ी सावधानी से रखा गया है। ऐसे महत्वपूर्ण अंग का निरोग एवं स्वस्थ रहना बहुत ही आवश्यक है।

मनुष्य के मस्तिष्क में यह एक विशेषता है कि वह जितना देखता, सुनता सोचता या विचार करता है, उतनी ही उसके दिमाग की वृद्धि होती है। इन क्रियाओं द्वारा वह दिन प्रति दिन दिमाग के खजाने को भरता ही रहता है।

सहजक्रिया

यह एक ऐसी क्रिया है, जो हमारी बिना इच्छा के मस्तिष्क की अनजान स्थिति में होती है। ऐसी स्थिति में मस्तिष्क का कोई सहयोग नहीं होता। जैसे हमारी आंख में अचानक धूल या अन्य वस्तु गिरने पर पलक स्वत: ही बन्द हो जाते हैं। इस प्रकार दैनिक—जीवन में सहज–क्रिया के कई उदाहरण मिल सकते हैं। बचपन में हम कई कामों को सीखते हैं। उस समय ये क्रियाएं इच्छा के बल पर होती हैं किन्तु समय पाकर ये ही सहजक्रिया बन जाती हैं।

संवेदन

मनुष्य के मस्तिष्क में कुछ ऐसी मानसिक क्रियाए और भी होती हैं, जिनके बारे में जानना आवश्यक है। इन क्रियाओं के तीन भेद हैं—

१. ज्ञानक्रिया :—

यह क्रिया दैनिक-जीवन में बराबर चलती रहती है। जैसे किसी वस्तु को छूना, उठाना, रखना आदि कार्य इस क्रिया के अन्तर्गत होते हैं। इन सब क्रियाओं का सम्बन्ध ज्ञान कराने अथवा जानकारी से है।

२. संवेदन :—

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा हम प्रत्येक वस्तु का ज्ञान प्राप्त करते हैं। जब हमारी भावना उस वस्तु को प्राप्त करने की स्थिति में सुख का अनुभव करती है अथवा उससे पृथक् होने की दशा में दुखी होने की अवस्था उत्पन्न होती है तो इस क्रिया से हमारे मन में संवेदन होगा।

३. व्यवसाय :—

संवेदन उत्पन्न होने पर हम जो भी प्रयत्न करते हैं, वह व्यवसाय कहलाता है। इस प्रकार ये तीनों दशाए एक दूसरे से मिली–जुली रहती हैं। किन्तु किसी भी दशा में मानसिक कार्य में एक की प्रधानता तथा दो गौण रहती हैं। जिस अवस्था की प्रधानता हो, उसी के अनुसार कार्य का नामकरण किया जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में सुख दुःख की भावनाएं होती हैं, जिनके आधार पर वह कार्य करता है। अगर उसके शरीर पर किसी प्रकार की चोट लगती है तो उसे शारीरिक कष्ट होगा। यह दुःख का सवेदन है, जिसे इन्द्रिय-सवेदन भी कहते हैं। दूसरा सवेदन-मानसिक है। जैसे कोई व्यक्ति हमे कटु शब्द कहता है तो हमारे हृदय को वह बात बहुत बुरी लगती है; जिसे हम सहन नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति मे हमारे मन में कई प्रकार के भाव उत्पन्न होंगे। यह क्रिया भाव संवेदन कहलाती है।

इन्द्रिय-सवेदन का सम्बन्ध शरीर से है, अत. इसे बाहरी संवेदन कहा है। भाव-सवेदन का सम्बन्ध मन से है, अतः इसे भीतरी माना गया है। इन्द्रिय-सवेदन से वही अंग प्रभावित होगा, जहा चोट लगी है। किन्तु भाव-संवेदन से समस्त शरीर प्रभावित होता है। बचपन मे बालक मे इन्द्रिय-सवेदन की अधिकता रहती है तथा बाद मे अवस्था बढ़ने के साथ साथ भाव-सवेदन की। इन्द्रिय-सवेदन का प्रभाव वर्तमान तक ही होता है, जब कि भाव-सवेदन भूत तथा भविष्य दोनो के बारे मे सोचता है। भाव-सवेदन से प्रभावित होने पर बालक के व्यवहार मे परिवर्तन होने लगता है।

सवेग

सवेग की उत्पत्ति प्रारम्भ मे इन्द्रियो के सवेदन से होती है। बालक की प्रथम अवस्था इन्द्रिय-सवेदन पर आधारित है। मनोवैज्ञानिको का मत है कि ज्यों ज्यो बालक का विकास होगा, यह इन्द्रिय-सवेदन भाव-सवेदन का रूप धारण करता जाएगा। सवेग के कारण बालक मे भिन्न भिन्न परिवर्तन होते दिखाई देंगे। जैसे-हमारे पास किसी प्रिय व्यक्ति का शुभ सदेश पहुँचता है तो हम उस स्थिति मे संवेग मे पूर्ण हो जाते हैं क्योंकि जिस व्यक्ति का सदेश प्राप्त हुआ है, उससे हमारी घनिष्ठता है इसलिये यह अवस्था सवेगात्मक सम्बन्ध कहलाती है। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति हमे अपशब्द कहता है या गाली देता है तो हम क्रोधित हो जाते है। उस समय हमारा सम्पूर्ण शरीर क्रोध से कांपने लगता है तथा चेहरा सुर्ख हो जाता है। इस प्रकार हमारे शरीर मे परिवर्तन होते हैं।

कला शिक्षकों को चाहिए कि वे गलत सवेगों का दमन कर अच्छे एवं उचित गो का शिक्षा द्वारा विकास करें क्योंकि जीवन में इनका बहुत महत्व है। इसके

लिये मुख्य तीन बातों का ध्यान रखना चाहिये — (१) स्नेह (२) व्यवहार (३) क्रोध-शांति ।

१. स्नेह

हम स्नेह के द्वारा कठिन कार्य आसानी से कर सकते हैं और करवा सकते हैं। स्नेह का दूसरा नाम प्रेम भी है। प्राणी मात्र प्रेम के वशीभूत है। प्रेम का प्रतिबन्ध बहुत ही शक्तिशाली है। सम्बन्ध के अनुसार प्रेम के स्वरूप को पृथक् पृथक् जाना जा सकता है, जैसे वालक का माता पिता के प्रति, भक्त का ईश्वर के प्रति, मित्र का मित्र के प्रति तथा पति का पत्नी के प्रति आदि। इस प्रकार ये सब रूप एक होते हुए भी यदि इनका भावनात्मक सम्बन्ध देखा जाए तो एक दूसरे से भिन्न हैं। प्रेम करने वाले वालक या व्यक्ति को प्रेम का सही संरक्षण न मिले तो वह उस व्यक्ति के प्रति संघर्ष के लिए उतारू हो जाता है। अतः प्रेम--भाव बना रहे, ऐसा प्रयत्न शिक्षक की तरफ से होना चाहिए।

२. व्यवहार

वालक के हृदय में आपके प्रति प्रेम है। यदि आपका व्यवहार ठीक नही है तो वालक का मन अस्त–व्यस्त हो जाता है और समय पाकर प्रेम के अभाव में उसके भावों में परिवर्तन आ जाता है। अतः वालक के चारित्रिक–विकास के लिए उचित प्रेम सम्बन्ध बने रहे, तभी उसे लाभ होता है।

३: क्रोध शान्ति

क्रोध का संवेग वालक में बराबर पाया जाता है। किसी न किसी रूप में प्रत्येक वालक क्रोध करता है, जिसका कारण बालक की इच्छानुसार कार्य का न होना है। दूसरा कारण यह भी है कि वालक को परिवार तथा बाहर के लोगों को क्रोधित होते हुए देखने का अवसर मिलता रहता है। वह इसका अनुकरण करता है। शिक्षक चाहे तो चतुराई से वालक में क्रोध के संवेग को धीरे धीरे कम या शान्त कर सकता है।

निराशा

जीवन में निराशा उत्पन्न होने के कई कारण हैं। वालक में भी निराशा की प्रवृत्ति पाई जाती है। निराशा उत्पन्न होने पर उसमें हीन भावना उत्पन्न होती है। ऐसी दशा में वह किसी भी कार्य को करने का साहस नहीं करता। कभी कभी

निराश बालक अपने जीवन तक को समाप्त कर देते हैं। अतः इस प्रकार की भाव-नाओं के कारणों को जानकर उन्हें शीघ्र ही दूर कर देना चाहिये। निराशा उत्पन्न होने के कारण निम्न प्रकार से हैं:—

(अ) गृह-कलह।
(ब) इच्छा-पूर्ति न होना।
(स) कार्य करने पर भी प्रशंसा न मिलना।
(द) उच्च स्तर पाने में असफल होना।

संगीत एवं नृत्यकारों में यह प्रवृत्ति अधिकतर पाई जाती है। उनकी निराशा के कारण प्रशंसा न मिलना, इच्छाओं की पूर्ति न होना तथा उच्च स्तर के लिए अस-फल होना आदि हैं। प्रशंसा की भूख कलाकार में इतनी तीव्र होती है कि बराबर प्रशंसा मिलते रहने पर भी उसे संतोष नहीं होता।

इच्छाशक्ति

प्रत्येक मनुष्य की यह वह मानसिक-शक्ति है, जिसके द्वारा वह अपने जीवन के कार्यों का निर्णय करता है। जिस कार्य या वस्तु की हम इच्छा करें, उसका सही ज्ञान होना चाहिये। उसके पश्चात् उसे प्राप्त करने की इच्छा करनी चाहिये। बुद्धिमान पुरुष अपने कार्यों का सही निर्णय कर लेते हैं, अतः उनकी इच्छाएं पूरी हो जाती हैं। अगर हमारी इच्छा-शक्ति प्रबल है तो हम उस वस्तु को प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु केवल इच्छाशक्ति की प्रबलता ही काम नहीं करती, इसके साथ ही हमें उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न भी करना पड़ता है। प्रयत्न करने से पूर्व हमारे अन्दर दो विरोधी विचार धाराएं साथ साथ कार्य करती हैं, जिनके कारण हम शीघ्र ही किसी निर्णय तक नहीं पहुंच पाते। हमारे सामने यह एक ऐसी स्थिति होती है, जिससे हम दुविधा में फंस जाते हैं। विरोधी विचारों के संघर्ष में किसी एक विचार पर निर्णय के लिए कार्य को प्रारम्भ कर देने पर ही दुविधा का अन्त हो जाता है।

मनुष्य परिस्थितियों का दास है। इच्छाशक्ति द्वारा सही निर्णय कर लेने के पश्चात् भी परिस्थितियां उसके लिए बाधा उत्पन्न कर देती हैं और उसे अपना निर्णय बदलना पड़ता है, इसके मुख्य कारण निम्न हैं—

(अ) जोश में आकर कोई बालक किसी प्रकार का निर्णय कर लेता है किन्तु परिणाम के बारे में उसे बताये जाने पर उसकी इच्छा-शक्ति कमजोर पड़ जाती है।

(ब) दुविधा में फंसा हुआ बालक क्या करे और क्या न करे, यह समझ नहीं पाता। वह अपने विचारों को एक ओर मोड़ कर बिना परिणाम सोचे ही निर्णय कर लेता है। यह निर्णय स्थायी नहीं होता। योग्य शिक्षक जब चाहे, इन विचारों को नया मोड़ दे सकता है।

(स) किसी बात को बिना सोचे-समझे जिद्द करने वाले बालक अपने निर्णय के पक्के दिखाई देते हैं। ऐसे बालकों के साथ स्नेह का व्यवहार कर उन्हें सही मार्ग बतलाया जावे तो वे अपनी जिद्द को छोड़ सकते हैं। डरा धमका कर जिद्द को दूर नहीं किया जा सकता। एक बार बालक किसी डर से अपनी जिद्द को छोड़ भी देगा तो समय पाकर वह पुनः उसे अपना लेगा।

संगीतज्ञों एवं नृत्यकारों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई जाती है। वे अपने घराने की बात को हठ द्वारा दूसरों पर थोपने का प्रयास करते हैं क्योंकि इन लोगों में शिक्षा का अभाव रहा है। विचारवान व्यक्ति हठी नहीं होगा क्योकि उसकी इच्छाशक्ति का विकास व्यावहारिक रूप में हो चुका है। ऐसा व्यक्ति अपनी कमजोरी या गलती को अच्छी तरह समझ लेता है।

नृत्य शिक्षा के सिद्धान्त

वर्तमान युग मे नृत्य की शिक्षा के लिए कोई सिद्धान्त बना हुआ नहीं है और न इससे पूर्व इसकी आवश्यकता ही समझी गई। नृत्य-शिक्षा को जब पाठ्यक्रम-योजना के अन्तर्गत लेकर व्यवस्थित शिक्षा देते हैं तो उसके सिद्धान्तों को भी निश्चित करना आवश्यक हो जाता है। शिक्षा के साथ नृत्य का समन्वय करने पर सिद्धान्त भी उसी के अनुकूल मानने होंगे। नृत्य-शिक्षा के लिए निम्न सिद्धान्त अपनाने आवश्यक हैं—

१. नृत्य की शिक्षा मनोवैज्ञानिक आधार पर हो।

२ बालक का बौद्धिक तथा नैतिक स्तर ऊचा उठाने हेतु मूल-प्रवृत्तियो के विकास मे नृत्य-शिक्षा सहयोगी हो।

३. बालक की रुचि का ध्यान रख कर नृत्य-शिक्षा दी जावे।

४. उन आदतो तथा वस्तुओ मे बालक को हमेशा दूर रखा जावे, जो उसके विकास में बाधक हो।

५. नृत्य-शिक्षा का मूल उद्देश्य समाज-कल्याण हो, न कि मनोरंजन मात्र।

६ नृत्य-शिक्षक का व्यवहार बालक के साथ स्नेहमय तथा उदारतापूर्ण रहना चाहिए।

७. कक्षा मे बालक की आलोचना नहीं की जानी चाहिए। इससे विद्यार्थी की भावनाओं को ठेस पहुंचती है।

८. जो भी भाव एवं मुद्राएं सिखाई जावें, उनका अर्थ स्पष्ट हो, ताकि बालकों में भावाभिव्यक्ति की क्षमता आ सके।

९. नृत्य से बन्धुत्व की भावना आती है। अतः नृत्य-नाटिकाएं तथा सामूहिक नृत्य-शिक्षण पर बल दिया जावे।

१० नृत्य द्वारा मस्तिष्क को शान्ति मिलती है, जिससे बालक आसानी से अन्य विषयों को ग्रहण कर सकता है।

११. नृत्य को एकांकी विषय मान कर शिक्षा देना विशेष लाभदायक नहीं है। अन्य विषयों के साथ उसका समन्वय करना अति आवश्यक है।

२. भावभिव्यक्ति के लिए नृत्य कला सबसे अच्छा विषय है।

नृत्य शिक्षा के साधन

नृत्य प्रकृति की देन है। व्यक्ति को नृत्य का ज्ञान बालकपन से ही किसी न किसी रूप में होने लगता है। नवजात शिशु भी मूक-भाषा में अंग-संचालन द्वारा मन के भावों को समझाकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति करवा लेता है। बचपन से लेकर जीवन की प्रत्येक अवस्था में नृत्य सीखने के लिए प्रत्यक्ष तथा आप्रत्यक्ष कई प्रकार के साधन हैं, जो हमें गुनगुनाने तथा भावाभिव्यक्ति करने के लिए मजबूर करते हैं। इन साधनों को निम्नप्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।
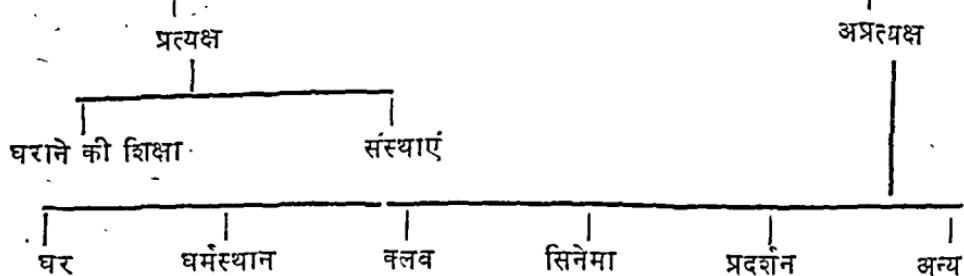
प्रत्यक्ष साधन

यह वह साधन है, जहां शिक्षा देने की पूर्ण व्यवस्था होती है। घराने के कलाकार अपने निवास-स्थान पर अथवा छात्र के घर पर शिक्षा देते हैं। दूसरी व्यवस्था

संस्थागत होती है, जहां नियमित रूप से शिक्षा दी जाती है। घराने की शिक्षा के लिए कोई योजना नहीं होती, गुरु तथा शिष्य की सुविधानुसार अभ्यास करवाया जाता है। संस्थागत शिक्षा देने के लिए योजना बनाई जाती है। संस्था में सभी वर्ग के छात्र प्रवेश प्राप्त कर लाभ उठा सकते हैं किन्तु घराने की शिक्षा कला-शिक्षक की इच्छा पर निर्भर करती है। घराने का कला-शिक्षक व्यक्ति विशेष पर ही केन्द्रित होता है, इसके लिए न किसी प्रकार का पाठ्यक्रम होता है और न समय का बन्धन। इन आचार्यों की शिक्षा का कार्यक्रम अनिश्चित तथा अव्यवस्थित रहता है। संस्थागत शिक्षण के लिए शिक्षा का स्तर निश्चित कर अवधि में बांध दिया जाता है। इससे नृत्य का सर्वांगीण-शिक्षण तथा अधिक प्रचार व प्रसार किया जा सकता है, जब कि घराने की शिक्षा व्यक्ति विशेष तक ही सीमित रहती है।

अप्रत्यक्ष शिक्षा

घर- शिक्षा-क्षेत्र में यह वह साधन है, जिसके लिए शिक्षा देने की कोई व्यवस्था नहीं करनी पड़ती। व्यक्ति के जीवन में समय समय पर ये साधन स्वयं ही जुड़ते रहते हैं और मानव उनके द्वारा नृत्य को किसी न किसी रूप में ग्रहण कर लेता है। अगर घर का वातावरण संगीत एवं नृत्यमय है तो बालक बहुत कुछ घर के वातावरण से ही सीख जाता है। नृत्यकार से बालक ताल व तोड़े अप्रत्यक्ष रूप से ग्रहण कर लेता है और उसके मस्तिष्क में लय एवं ताल समा जाते हैं।

धार्मिक स्थान :—

धार्मिक स्थानों में बालकों को उनके माता-पिता अधिकतर अपने साथ ले जाते हैं। इन स्थानों में समय समय पर भजन, कीर्तन, रामलीला आदि बालकों को देखने को मिलते हैं, जिनका प्रभाव बालक के जीवन पर बहुत व्यापक पड़ता है। ऐसे वातावरण से बालक का मन भजन गाकर नाचने की प्रवृत्ति की ओर होता है और वह कभी कभी इस क्रिया को घर पर करने भी लगता है। इन स्थानों से बालक अप्रत्यक्ष रूप से संगीत-नृत्य की शिक्षा ग्रहण करता रहता है।

क्लब :—

शहरों में ऐसी संस्थाएं होती हैं, जहां सांस्कृतिक कार्यक्रम की व्यवस्था होती

है । इन संस्थाओं में संगीत, नाटक और नृत्य आदि के आयोजन समय-समय पर संस्था के सदस्यों या अन्य कलाकारों के द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। ऐसे प्रदर्शनों को देखने का अवसर शहरी वालकों को मिलता रहता है। इन प्रदर्शनों का प्रभाव वालक पर पड़ता है और वह अपनी रुचि के गीत एवं नृत्य को ग्रहण कर लेता है। समय पाकर वह भी अपना प्रदर्शन अपने साथियों में करता है और अपनी प्रवृत्ति के वालक मिल जाने पर वे भी अपना क्लब वना लेते हैं।

सिनेमा :—

आधुनिक युग में सिनेमा के द्वारा संगीत–नृत्य का प्रचार सवसे अधिक हुआ है। घर-घर में वालकों के कण्ठों से कोई न कोई सिनेमा की स्वर लहरी सुनाई पड़ती है। वालक सिनेमा के द्वारा नृत्य देख कर भाव–भंगिमा वनाते हैं और रेडियो की धुन पर नाचते हैं। इनमें वालिकाओं को नृत्य करते हुए विशेष रूप से देखा जाता है। सिनेमा ने संगीग–जगत् में एक ऐसी लहर फैलादी है कि कोई भी आयोजन विना नृत्य के सफल नहीं माना जाता। वालकों के मस्तिष्क पर सिनेमा के गीतों तथा नृत्य का बहुत प्रभाव पड़ा है।

प्रदर्शन :—

सांस्कृतिक–प्रदर्शनों के कई रूप हमारे सामने हैं, जिनके द्वारा वालक अप्रत्यक्ष रूप से संगीत व नृत्य को सीखता है। ऐसे अवसर आते ही रहते हैं। जैसे–विवाह शादी के समय, मेले, त्यौहार, पूजा, कथा, स्कूलों के विशेष कार्यक्रम तथा अन्य आयोजन आदि। इन अवसरों का लाभ वालक लेता रहता है और भविष्य में इन देखे हुए नृत्यों को किसी न किसी रूप में वह प्रकट करता है। इस प्रकार प्रदर्शनों द्वारा वालक बहुत कुछ सीख जाता है। अतः प्रदर्शनों का स्तर ऊंचा एवं रुचिकर होना चाहिए, जिससे वालक के चरित्र पर उसका गलत प्रभाव न पड़े।

संगीत–नृत्य के विशेष कार्यक्रम संस्थाओं द्वारा आयोजित किये जाते हैं। इन कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए विशेष रूप से कला की साधना की जाती है। ऐसे कार्यक्रमों के अन्तर्गत, नृत्य–प्रतियोगिताएं आती हैं। ये प्रतियोगिताएं स्थानीय, क्षेत्रीय, प्रान्तीय तथा अखिल भारतीय स्तर पर भी आयोजित की जाती हैं। इनके अलावा संगीत–कान्फ्रेन्सों के नाम से बड़े बड़े शहरों में शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य के

तीन-तीन दिन तक के आयोजन होते हैं। ऐसे प्रदर्शनों से विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों तथा उनके बालकों को लाभ होता है।

. अन्य साधन :—

जीवन में समय-समय पर संगीत-नृत्य की प्रेरणा व्यक्ति को मिलती ही रहती है। विश्व के कण कण में संगीत-नृत्य व्याप्त है। अतः व्यक्ति उससे वंचित रह नहीं सकता। आप गलियों में भिख-मंगों को नाचते तथा गाते हुए पायेंगे। वस्तुओं की बिक्री के लिए भी नाच-गाकर विज्ञापन किया जाता है। कहीं भजन-मण्डली घूम रही है तो कहीं रास-मण्डलियों का कार्यक्रम चल रहा है।

इस प्रकार नृत्य शिक्षा के अप्रत्यक्ष साधन इतने अधिक है कि बालक कहीं न कहीं उनसे लाभ उठा ही लेता है। नृत्य करना मानव का स्वभाव है। जब मन के अन्दर आनन्द की हिल्लोर उठती है तो मनुष्य अपने आप को रोक नहीं सकता और उसके पाव स्वतः ही थिरक उठते हैं। नाचने की प्रवृत्ति पशु-पक्षियों तक में पाई जाती है। सवाल सिर्फ शास्त्रीय नृत्य का है, जिसकी शिक्षा प्रत्यक्ष साधनों द्वारा ही सही रूप से ग्रहण की जा सकती है।

घुंघरू और उनका प्रयोग

घुंघरू और नृत्य समन्वित हैं। घुंघरुओं की किस्में बहुत हैं। इसी प्रकार बालक-बालिकाओं के स्वभाव में विभिन्न प्रवृत्तियां पाई जाती हैं। प्रत्येक बालक का अपना अलग स्वभाव होने के कारण वह वस्तुओं तथा ध्वनियों का चयन अपने स्वभाव के अनुकूल ही करता है। स्वभाव जन्मजात होता है। साथ ही वह वातावरण पर भी निर्भर करता है। इसके लिए किसी प्रकार की शिक्षा-दीक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ती। शिक्षक को बालक की जानकारी अवश्य होनी चाहिए। बालकों के स्वभाव का परीक्षण घुंघरुओं के माध्यम से भी किया जा सकता है।

विभिन्न धातुओं के घुंघरुओं को अलग अलग आकार के अनुसार रस्सियों में पिरो लिया जावे और इन लड़ियों को कक्षा की दीवार पर लटका दिया जावे। कुछ घुंघरू लगे कपड़े व चमड़े के पट्टे भी रख दिये जावें। इसी प्रकार चांदी के जेवर जैसे-पायलें, नेवर,

पैंजनी आदि भी सजा दिये जावें। ये सभी प्रकार के साधन घुंघरुओं से युक्त हों, जिनसे किसी न किसी प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती हो।

कक्षा–अध्यापक बालक–बालिकाओं को आदेश दे कि वे अपनी अपनी पसन्द के घुंघरू अथवा पायल–पैंजनी ले लेवें। इस आदेश के अनुसार सभी विद्यार्थियों के अपनी पसन्द के घुंघरुओं का चुनाव कर लेने के पश्चात् अध्यापक प्रत्येक बालक के घुंघरुओं का व उनसे उत्पन्न होने वाली ध्वनि का निरीक्षण करे तो निम्न प्रकार का परिणाम बालकों के स्वभाव के सम्बन्ध में सन्मुख आएगा —

१. चांदी के बने आभूषणों को बालिकाएं अधिक पसन्द करती हैं।

२. जिन बालिकाओं को नृत्य में रुचि है, वे पीतल या भरत के घुंघरुओं का चयन करती हैं। इसमें चमड़े के पट्टे में लगे घुंघरू अधिक रुचिकर होंगे।

३. जिन बालिकाओं का सम्बन्ध संगीत एवं नृत्य से नहीं रहा है, वे शृंगार-प्रधान घुंघरुओं के गहनों को पसन्द करती हैं।

४. ध्वनि प्रधान घुंघरुओं के गहने चंचल प्रकृति की बालिका उठाती है तथा सूक्ष्म ध्वनि के गहनें लज्जाशील एवं भोली–भाली बालिका लेती है।

५. क्रूर व कठोर प्रकृति की बालिका अधिक वजनदार तथा अधिक ध्वनि वाले आभूषण लेती है।

इसी प्रकार बालकों के स्वभाव की भी जानकारी घुंघरुओं के चयन के आधार पर की जा सकती है।

१. लज्जाशील व भोला–भाला बालक सर्व प्रथम तो किसी प्रकार के घुंघरुओं को उठाता ही नहीं और अगर वह चेष्टा करके कोई लड़ी उठाता भी हैं तो सूक्ष्म-ध्वनि वाले छोटे घुंघरू ही।

२. चंचल व उत्साह प्रकृति का बालक मध्यम आकार के सूक्ष्म ध्वनि वाले पीतल से बने घुंघरू पसन्द करेगा।

३. नृत्य में रुचि रखने वाला बालक चमड़े के पट्टे पर लगे घुंघरुओं को लेता है।

४. शैतान प्रवृत्ति वाला बालक तेज ध्वनि वाले भरत के बने घुंघरू उठाता है।

५. स्वार्थी व चोरी की प्रवृत्ति वाला बालक दो तीन घुंघरुओं की लड़ियों को उठाता है। वह चांदी के गहने जिनमें घुंघरू लगे हों उठाना पसन्द करता है।

घुंघरुओं के माध्यम से बालक – बालिकाओं के स्वभाव में काफी अन्तर प्रतीत होता है। घुंघरुओं की मधुर ध्वनि तथा शृंगार प्रधान वस्तु बालिकाओं को प्रिय है जबकि तेज ध्वनि तथा पुरुषत्व-प्रधान वस्तु को बालक पसन्द करते हैं। घुंघरू तथा उनसे उत्पन्न होने वाली ध्वनि के आधार पर बालकों का स्वभाव अच्छी प्रकार जाना जा सकता है। कुशल नृत्य-शिक्षक स्वभाव के अनुसार ही पात्रों का चयन कर नृत्य - प्रदर्शन को सफल बना सकता है।

नृत्य के लिए मधुर ध्वनि वाले घुंघरुओं का ही प्रयोग किया जाता है। इनमें भी मानव-स्वभाव तथा आयु वर्ग के अनुसार विभिन्न धातुओं के घुंघरू व्यक्ति पसन्द करता है।

नृत्य का प्रदर्शन मुख्या दो प्रकार से होता है—

(१) लोक-नृत्य (२) शास्त्रीय-नृत्य।

(१) लोक-नृत्य :—

जिस नृत्य में किसी भी प्रकार का बन्धन नहीं होता, और व्यक्ति अपनी भावाभिव्यक्ति करने के लिए हर प्रकार से स्वतन्त्र होता है, ऐसे नृत्य में कांसा, भरत तथा चांदी धातु के घुंघरुओं का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के नृत्य में घुंघरुओं की ध्वनियों का विशेष महत्व नहीं माना गया है तथा किस नृत्य में किस प्रकार के घुंघरुओं का प्रयोग किया जावे, इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। किन्तु स्त्रियों के नृत्य में भरत के छोटे घुंघरुओं को ही काम में लिया जाता है। सम्पन्न-सम्पन्न स्त्रियां जेवरों में लगे चांदी धातु के घुंघरुओं का प्रयोग करती हैं। ऐसा नृत्य स्त्री-समाज तक ही सीमित है। पुरुषों द्वारा किये जाने वाले नृत्य में भरत तथा कांसे धातु के घुंघरुओं का प्रयोग किया जाता है।

चांदी धातु के घुंघरू पायल, पैंजनी आदि जेवर में ही लगे होते हैं, इनका प्रयोग पृथक रूप से नहीं किया जाता। अतः ये बालकों तथा स्त्रियों तक ही सीमित हैं। ऐसे घुंघरुओं के साथ कोमल-भावनाओं के तथा शृंगार-प्रधान नृत्य ही किये जाते हैं।

चांदी के घुंघरुओं की जड़ाई होती है, जिसके बनाने वाले इस विषय के विशेषज्ञ होते हैं। जड़ाई के घुंघरुओं के पृथक् पृथक् नाम हैं जैसे-चपटे, बेर नुमा, लम्बे, चौरासिया आदि। विशेषकर चौरासिया--घुंघरुओं की ध्वनि नृत्योपयोगी है।

भरत के घुंघरू जड़ाई द्वारा बनाये जाते हैं। इनकी ध्वनि मधुर होती है तथा सभी प्रकार के नृत्यों में इनका प्रयोग किया जाता है। छोटे आकार के घुंघरुओं को बालक-बालिकाएं तथा स्त्रियां पसन्द करती हैं इनमें जड़ाई के साथ फूल-पत्ति का कार्य भी किया होता है। इनकी चार कली की बनावट होती है तथा अन्दर लोहे धातु की गोली डाल दी जाती है। गोली के टकराने से घुंघरू से छुम, छन की ध्वनि उत्पन्न होती है। ये घुंघरू विभिन्न आकार के होते हैं किन्तु नृत्य के लिए मुख्यतः तीन प्रकार के ही घुंघरुओं को ही काम में लाया जाता है — छोटा आकार, मध्य आकार तथा बड़ा आकार।

छोटे घुंघरू दो कली के होते हैं किन्तु मध्य व बड़े आकार के घुंघरू चार कली के होते हैं। इनमें मध्य एवं बड़े घुंघरूओं का प्रयोग लोक-नृत्य तथा शास्त्रीय-नृत्य दोनों में ही आवश्यकता एवं-वातावरण के अनुसार किया जाता है।

(४) शास्त्रीय-नृत्य

उत्तर भारत का प्रमुख शिष्ट नृत्य कत्थक माना गया है। इस नृत्य में ताल के बन्धन के साथ साथ घुंघुरुओं की ध्वनियों का बहुत बड़ा महत्व है। लय-प्रधान, ध्वनि एवं बोल-प्रधान नृत्य का प्रदर्शन करने में कांसे तथा भरत-धातु के घुंघरू उपयुक्त हैं। घुंघरुओं के बोलों को हर प्रकार के रस एवं भाव से सम्बन्धित कर व्यक्ति का मनोरंजन करना इस नृत्य का मुख्य उद्देश्य है। ऐसे प्रदर्शन के लिए तीव्र ध्वनि वाले घुंघरू के काम में लाये जाते हैं। जिनका आकार झाड़ी के गोल बेर के समान होता है।

नर्तक हजारों दर्शकों के सम्मुख अपना प्रदर्शन करता है। अतः आवश्यक है कि घुंघरुओं द्वारा जो भी ध्वनि भावानुसार उत्पन्न की जावे, उसका आनन्द प्रत्येक दर्शक व श्रोता प्राप्त कर सके। नर्तक प्रत्येक पांव में कम से कम एक सौ घुंघरू बांध कर नृत्य करता है। नर्तक के प्रदर्शन की सफलता तभी मानी जाती है जबकि वह नृत्य-रचनाओं की ध्वनियों को स्पष्ट रूप से प्रत्येक दर्शक तथा श्रोता तक पहुंचा कर उसका आनन्द दे सके। भारत के अन्य शिष्ट-नृत्यों में भी इन्हीं घुंघरुओं का प्रयोग किया जाता है।

भरत तथा कांसे धातु के घुंघरू ढलाई करके बनाये जाते हैं, इनमें दो कलियां होती हैं और ध्वनि उत्पन्न करने के लिए अन्दर लोहे की गोली डाल दी जाती है। शास्त्रीय नृत्य के लिए गोल आकार के घुंघरू महत्वपूर्ण माने गये हैं। इनमे लम्बे आकार के घुंघरू भी होते हैं किन्तु उनका उपयोग पशुओं के लिए किया जाता है। भरत-धातु के घुंघरुओं की ध्वनि अन्य धातुओं से तीव्र होती है। अतः वर्तमान रंगमंच पर इनका प्रयोग बहुत किया जाता है।

लोकनृत्यों का प्रदर्शन स्वान्त.सुखाय, मनोरंजन, भक्ति-भावना, मांगलिक कार्य, त्योहार एवं पर्वों पर किया जाता है। परन्तु शास्त्रीय नृत्य का प्रदर्शन मनोरंजनार्थ किया जाकर ज्ञान वृद्धि का ही मुख्य लक्ष्य रहा है।

वैज्ञानिक नृत्य शिक्षण पद्धति

वर्तमान नृत्य-शिक्षा में पदाघात पर विशेष जोर दिया जाता है, जबकि नृत्य में शरीर के सभी अंगों तथा उपांगों का उपयोग होना चाहिए। नृत्य–कक्षा में आते ही अध्यापक, ता, थेई, तत् की साधना प्रारम्भ करवा देता है। इस साधना से विद्यार्थी कुछ ही समय पश्चात् ऊब जाता है। नृत्य जैसे सरस विषय को शिक्षा के क्षेत्र में नीरस बना दिया गया है। आज के वैज्ञानिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में नये नये प्रयोग तथा साधन जुटाये जा रहे हैं किन्तु संगीत एवं नृत्यकला के साधकों ने इस विषय पर आज तक जरा भी ध्यान नहीं दिया है। समय की मांग के अनुसार नृत्य शिक्षा प्रणाली में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना अति आवश्यक है। इस वैज्ञानिक प्रणाली से अनेक लाभ हैं —

१. इस प्रणाली से बालक की शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का विकास होता है।

२. इस प्रणाली से नृत्य–शिक्षा को रोचक व सजीव बनाया जा सकता है।

३. यह प्रणाली बालकों में अनुशासन की भावना उत्पन्न करेगी।

४. यह किसी भी विषय की गूढ़ व कठिन बातों को सरल व सुगम बनाने में सहायक होगी।

५. इस प्रणाली द्वारा बालक के चरित्र--निर्माण में सहायता मिलेगी।

६. बालक खेल–पद्धति द्वारा शिक्षा ग्रहण कर लेगा तथा निस्संकोची बनेगा।

७. बालक की हर क्षेत्र में आगे बढ़ कर कार्य करने की भावना उत्पन्न होगी।

उपर्युक्त लाभ तभी प्राप्त हो सकते हैं, जबकि नृत्य-शिक्षा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जावे।

नृत्य-शिक्षा के अनेक साधन हैं, जिनमें ये प्रमुख हैं—

चार्ट, मॉडल, खेल, साहित्य, संग्रहालय, प्रदर्शन आदि

चार्ट

अन्य विषयों में चार्टों द्वारा शिक्षण देने की व्यवस्था है किन्तु संगीत तथा नृत्य कक्षाओं में सिर्फ वाद्य यंत्रों के अलावा कुछ नहीं मिलता। चार्ट एवं चित्रों से शिक्षा के लिए वातावरण बनता है तथा बालक इन्हें देख कर ही बहुत सी बातें जान लेता है। चार्टों को निम्न रूप में बनाया जावे :—

(क) संगीत सम्बन्धी
(ख) नृत्य सम्बन्धी
(ग) लय व ताल के चित्र
(घ) वाद्य यंत्रों के चित्र
(ङ) नक्शे
(च) कलाकारों के चित्र
(छ) वेशभूषा सम्बन्धी
(ज) रंग व रोशनी का ज्ञान
(झ) रागों के चित्र
(ञ) अन्य

मॉडल

नृत्य-शिक्षा में मॉडल के द्वारा बहुत कुछ सिखाया जा सकता है। मॉडल के लिए निम्न विषय हो सकते हैं—

(क) नृत्य मुद्राएँ

(ख) नृत्य सम्बन्धी मूर्तियां

(ग) वाद्य यंत्र

(घ) रंगमंच

खेल

नृत्य स्वयं एक मनोरंजक खेल है। खेल-खेल में शिक्षा ग्रहण की पद्धति इस विषय में अच्छी तरह लागू हो सकती है। खेल सभी को प्रिय हैं। जब व्यक्ति में शारीरिक शक्ति रहती है तो वह उस स्थिति में बल-प्रयोग के खेल पसन्द करता है। शारीरिक बल की कमी की स्थिति में मस्तिष्क-शक्ति के खेल खेले जाते हैं। विद्यार्थी को दोनों ही शक्तियों के खेल पसन्द हैं। नृत्य से शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही प्रकार की शक्तियों का विकास होता है। नृत्य-शिक्षा के लिए दोनों ही प्रकार के खेलों का लाभ लेना उचित है।

(अ) शारीरिक खेलः—

नृत्यकला स्वयं शारीरिक शक्ति का विकास करने वाली है। अत ऐसे नृत्यों का चुनाव किया जावे, जिनसे सभी अंग-प्रत्यंगों का विकास हो संगीत की धुन पर अंग तथा उपांगों के व्यायाम सम्बन्धी खेल कराए जाएं।

(ब) मानसिक खेलः—

योग्य एवं अनुभवी शिक्षक इस प्रकार के खेल अपनी बुद्धि के आधार पर स्वयं बना लेता है, जिनसे शिक्षा के साथ साथ विषय का ज्ञान भी बढ़ता है। ऐसे खेलों में लयप्रधान, तालप्रधान, नृत्य-मुद्राएं, गतियां आदि का ज्ञान कराया जा सकता है। यह सब शिक्षक की योग्यता एवं रुचि पर निर्भर करता है।

साहित्य

नृत्यकला विषयक साहित्य का अभाव है, फिर भी प्रयत्न करने पर उचित साहित्य उपलब्ध हो सकता है। बिना साहित्य के व्यक्ति का ज्ञान अपूर्ण रहता है। अतः साहित्य का संग्रह निम्न प्रकार से किया जावे :—

(अ) पुस्तकालय (कला सम्बन्धी पुस्तकों का संग्रह)

(ब) वाचनालय (विभिन्न भाषाओं की कला सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएं)

(स) अन्य (समय समय पर कला सम्बन्धी भाषण, गोष्ठियां सम्मेलन आदि का आयोजन)

संग्राहलय

इस विभाग में कला सम्बन्धी वस्तुओं का संग्रह किया जावे, जिनमें देश-विदेश की संस्कृति का बोध हो। संग्राहलय में विभिन्न देशों की वेशभूषा, वाद्ययंत्र, कलाकारों के चित्र, वस्तुएँ आदि का संग्रह हो।

प्रदर्शन

नृत्य देखने की कला है। इसका आनन्द प्रदर्शन के माध्यम से उठाया जाता है। यह जीवन की एक ऐसी क्रिया है, जो दिमाग की भूख को खुराक देती है। दृश्य-कला होने के कारण इससे सत्व, रज और तम गुणों के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। नृत्यकला एक ऐसा जीवित चित्र है, जिसमे लोकानुरंजन करने की अद्‌भुत शक्ति है। इस कला में कल्पना को स्फूर्ति प्रदान करने की शक्ति बहुत अधिक है।

नृत्य का सम्बन्ध नर्तक की भावना पर आधारित है। अतः नर्तक इसमें भावों को जितना स्वाभाविक बनाएगा, उसका नृत्य उतना ही श्रेष्ठ माना जाएगा। नृत्य-प्रदर्शन मे रसानुभूति स्वय वातावरण उपस्थित करती है। इस कारण साधारण व्यक्ति भी इस आकर्षण से प्रभावित हो जाता है। नृत्यकला विभिन्न रुचि वालों का एक ही समय मे एक साथ समाराधन करती है। इसमें मानव-जीवन के सुख, दुःख, हास्य, शृंगार, भले, बुरे सभी अंगों का चित्रण देखने को मिलता है।

नृत्य का कथानक विभिन्न घटनाओं का अनुकरण है। अनुकरण में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के कार्यों की नकल करता है। अनुकरण करना मानव की मूल-प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति पशु-पक्षियों मे भी पाई जाती है। व्यक्ति शारीरिक चेष्टाओं द्वारा संकेतों के माध्यम से भावाभिव्यक्त करता है, उस स्थिति में इस क्रिया में नृत्यात्मकता का प्रवेश होता है।

नृत्य नेत्र-मार्ग से हृदय को आकृष्ट करता है। इससे हृदय को एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है। किसी भी वस्तु को देखने से जो आनन्द प्राप्त

इस प्रदर्शन में व्यक्ति की इच्छा अपने द्वारा भावाभिव्यक्त करने की रहती है। इसके भी दो भेद हैं– स्वान्तःसुखाय और पेशेवर।

स्वान्तःसुखाय :—

इसका स्तर ऊंचा है और वास्तविक कला का आनन्द ऐसे ही प्रदर्शन से स्वयं को तथा समाज को प्राप्त होता है। अतः इसकी गणना उत्तम श्रेणी में मानी गई है।

पेशेवर–प्रदर्शन :—

ऐसे प्रदर्शनों का स्तर दूसरी श्रेणी में माना गया है। कलाकार समाज को प्रसन्न करने के लिए प्रदर्शन–शैली में नये नये चमत्कार उत्पन्न करता है। ऐसे प्रदर्शनों को व्यावसायिक रूप से आयोजित किया जाकर कला–अनुरागी कहलाने की भूख को शान्त किया जाता है। कला के इस रूप से क्षणिक आनन्द अवश्य प्राप्त होता है किन्तु इससे व्यवसाय की लालसा दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। ऐसे प्रदर्शनों की श्रेणी में नाटक मण्डली, नृत्य मण्डली, सिनेमा तथा संगीत – कान्फ्रेन्स आदि आते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे प्रदर्शन व्यक्ति को उत्तेजित मात्र करते हैं। अगर इनके स्वरूप में उचित परिवर्तन कर दिया जाए तो इन साधनों से अधिक लाभ की सम्भावना हो सकती है।

नृत्य प्रदर्शन की सफलता

उत्तर भारत का प्रमुख नृत्य कथक है। इस नृत्य का कलाकार चाहे वह किसी भी घराने का हो, घुंघरुओं की झनकार तथा कठिन तालबद्ध रचनाओं के आधार पर श्रोता एवं दर्शकों को प्रभावित करने का प्रयास करता है। नृत्य के इन बोलों को पांवों से निकाल लेना तथा ताल में लय का वैचित्र्य बताने से ही प्रदर्शन को सफल नहीं बनाया जा सकता। आज का कथक इससे अधिक नहीं है। नृत्य-प्रदर्शन की सफलता बहुत कुछ निम्न साधनों पर आधारित है—

१. बन्दिशें :— जो कुछ नाचना है, उसमें एक के बाद एक बन्दिश अधिक रोचक होनी चाहिए।

२. संगीत :— संगीत की मधुर धुन पर नृत्य-रचना चलती है। अतः संगीत की धुन का रस तथा भाव के अनुसार प्रयोग हो।

३. मेक-अप :— नर्तक को रंगमंच पर नृत्य प्रस्तुत करने के लिए अपने अंगों पर उचित मेक-अप करना आवश्यक है, जिससे चेहरे का सौन्दर्य बढ़ता है।

४. रोशनी :— रंगमंच पर विभिन्न भावों के अनुसार रंग-बिरंगी रोशनी का प्रयोग किया जावे।

५. वेशभूषा :— प्रदर्शन करने के लिए वेशभूषा का ज्ञान अति आवश्यक है। चुस्त पोशाक नर्तक के अंगों का संचालन करने के लिए बाधक है तो ढीली-ढाली पोशाक भी प्रदर्शन के सौन्दर्य को बिगाड़ती है।

६. घुंघरू की ध्वनि :— घुंघरुओं से हलके भारी पदाघात द्वारा विभिन्न रसों की उत्पत्ति करने की क्षमता होनी चाहिए।

७. रंगमंच :— प्रदर्शन की सफलता रंगमंच पर आधारित है। अतः रंगमंच सम्बन्धी पूरी जानकारी होनी चाहिए। जैसे—

(अ) रंगमंच बनाने व सजाने का ज्ञान।

(ब) पर्दे, विंग, झालर आदि का ज्ञान।

(स) रोशनी तथा माइक सम्बन्धी जानकारी।

(द) दृश्य सेट करने का ज्ञान।

(इ) पात्रानुसार रंगमंच पर प्रवेश व निकास।

इस प्रकार प्रदर्शन को सफल बनाने के लिए उपर्युक्त जानकारी बहुत ही जरूरी है। इनमें से किसी एक वस्तु की कमी प्रदर्शन को असफल कर देती है। अतः प्रदर्शन से पूर्व एक चार्ट बना लिया जावे, जिसकी एक एक प्रति सभी सम्बन्धित कार्यकर्ताओं के पास रहे। सफल प्रदर्शन से कार्यकर्ताओं तथा कला--प्रदर्शकों को बल मिलता है। स्कूलों के प्रदर्शन पेशेवर कलाकारों के रूप में नहीं किये जावें। इनसे हानि होने की ही सम्भावना अधिक है।

प्रदर्शन के रूप

प्रदर्शन के दो रूप हमारे सामने हैं – १ साधारण प्रदर्शन तथा २ विशिष्ट प्रदर्शन।

१, साधारण प्रदर्शन :—

इस प्रकार के प्रदर्शन के लिए विशेष प्रकार की तैयारी नहीं करनी पड़ती। सुविधानुसार स्थान व समय निश्चित करके तुरन्त इसकी व्यवस्था करली जाती है। इस प्रदर्शन के भी दो भेद हैं– १– स्वान्तः सुखाय तथा २- पेशेवर।

इन दोनों ही प्रदर्शनों की व्यवस्था समान रूप से करनी पड़ती है। पेशेवर कलाकारों का प्रदर्शन किसी विशिष्ट व्यक्ति के घर या सार्वजनिक स्थान पर आयोजित किया जाता है। इसी प्रकार दूसरे प्रकार के प्रदर्शन को आयोजित करने में कोई कठि-नाई नहीं आती। ऐसे साधारण प्रदर्शन में गायन, वादन, नर्तन, एकांकी, मूक–अभिनय, विचार गोष्ठी आदि का आयोजन होता है। संस्थाओं में ऐसे कार्यक्रमों में बालकों के अभिभावक तथा संस्था के पदाधिकारियों को भी सम्मिलित किया जाता है।

के बाद भी प्रदर्शन असफल हो जाने पर कार्यकर्ताओं में कई बार मन-मुटाव तक आ जाता है और भविष्य में ऐसा कार्यक्रम करने का उनका उत्साह समाप्त सा हो जाता है। ऐसे प्रदर्शनो में संस्था का वार्षिकोत्सव, नाटक, नृत्य, किसी विशिष्ट कलाकार का कार्यक्रम, प्रतियोगिताएँ, कला-प्रदर्शनी आदि किये जाते हैं।

किसी भी प्रकार के प्रदर्शन को सफल बनाने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है—

१. सर्व प्रथम एक समिति का गठन करके सभी कार्यों का विभाजन कर दिया जावे, जिससे कार्य भार हलका हो सके।

२. प्रत्येक कार्यक्रम की अर्थ-व्यवस्था पहले करली जावे और कम से कम खर्च करने की विधि अपनाई जावे।

३ आय तथा व्यय का हिसाब स्पष्ट रखा जावे।

४. कार्यक्रम मे शहर के प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा बालकों के अभिभावको को अवश्य बुलाया जावे।

५. जो प्रदर्शन विद्यार्थियों द्वारा किया जावे, उसका मूल्यांकन पेशेवर अथवा सिद्ध-हस्त कलाकारों से न कराया जावे।

६. प्रत्येक प्रदर्शन को सफल बनाने के लिए पूरी तैयारी तथा परिश्रम किया जावे।

७ प्रदर्शन के विषयों का चुनाव ऐसा न किया जावे, जो नीरस तथा निम्न स्तर का हों।

८. देश-काल के वातावरण को ध्यान में रख कर विषय चुना जावे।

९. कार्यक्रम का विषय ऐसा हो, जिसको प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक साधन आसानी से जुटाये जा सकें।

१०. कार्यक्रम को सरस एवं सुन्दर ढंग से प्रस्तुत कर मनोरंजक तथा आकर्षक बनाया जावे।

११. बालकों में मानवीय गुणों का विकास करने हेतु विषय का चुनाव उनकी मानसिक शक्तियों तथा अवस्था को ध्यान में रख कर किया जावे।

नृत्य तथा नाटक का प्रदर्शन बालकों की भावाभिव्यक्ति का सबसे उपयोगी साधन है। इसके द्वारा सामाजिक समस्याओं को सही रूप से दर्शकों के सम्मुख रख कर उन्हें सुलझाने के बारे में भाव तथा विचार बहुत ही सुन्दर तरीके से रखे जा सकते हैं।

संस्था और समाज का मधुर सम्बन्ध बनाने के लिए समय समय पर अच्छे सांस्कृतिक कार्यक्रम करने की अति आवश्यकता है। इन कार्यक्रमों से बालकों का बौद्धिक तथा मानसिक विकास तो होता ही है परन्तु साथ ही समाज के साथ सम्बन्ध जुड़ने से ऐसे कार्यक्रम करने वाली संस्था को भी स्थायीत्व मिलने में पूर्ण सहयोग प्राप्त होता है।

रंगमंच की सफलता

विशिष्ट प्रदर्शनों को सफल बनाने के लिए रंगमंच की व्यवस्था तथा उस पर प्रस्तुत किये जाने वाले कार्यक्रमों का एक चार्ट बना लिया जावे। यह चार्ट विशिष्ट व्यक्तियों के पास तथा आवश्यक स्थानों पर रहना जरूरी है। जैसे —

(१) संगीत एवं नृत्य निदेशक

(२) अनाउन्सर

(३) रोशनी की व्यवस्था करने वाला

(४) पर्दा उठाने--गिराने वाला

(५) सीन सेट करने वाला

(६) रंगमंच के पीछे का स्थान

(७) वेश भूषा का कमरा

(८) मेक--अप करने वाला

इस प्रकार की व्यवस्था हो जाने पर सभी सम्बन्धित व्यक्ति एक कार्यक्रम के पश्चात् दूसरे को तुरन्त पर्दा उठते ही प्रस्तुत कर देंगे। इससे कार्यक्रम विधिवत तथा सुन्दर ढंग से चलता रहेगा और रंगमंच से सम्बन्धित सभी व्यक्ति अपनी अपनी जिम्मेवारी को शान्तिपूर्वक निभा सकेंगे।

चार्ट का नमूना

प्रथम दृश्य

संख्या	कलाकारों के नाम	पर्दा	रोशनी	सीन सेट	संगीत	वेश भूषा	अन्य
१.	श्री............	नीला	सफेद	कुर्सी-२	राग या	सभी पात्रों	अन्य वस्तु जो समय पर आवश्यक हों, उनके नाम लिखें।
२.	"		हरी	टेबल-१	धुन का	की	
३	"		लाल,	शीशा-२	नाम	पोशाकों	
४.	"		आदि	आदि		के नाम	

इस प्रकार प्रत्येक दृश्य का चार्ट एक बड़े कागज पर बनाया जावे और उसकी प्रति सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को दे दी जावे।

व्यावसायिकता

नृत्यकला ललिता-कला होते हुए भी व्यावसायिक है। नृत्य का व्यवसाय दिन प्रति दिन बढ़ रहा है। इस युग में यह व्यवसाय चलाने के अनेक साधन हैं, जिनमें सिनेमा का साधन बहुत पनप रहा है। नृत्य का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है; जिसे अनेक रूपों में समाज ने ग्रहण किया है। नृत्य -कला को भाव-प्रधान कला माना है, जिसकी जीवन में उपयोगिता है। आज का व्यक्ति नृत्य-शिक्षा को व्यवसाय तथा दिखावे के लिए ग्रहण करता है। परन्तु इसे दिखावे के रूप में अपनाने वाला व्यक्ति इसकी गहराई तक नहीं पहुंच सकता और न इसका उचित आनन्द ही प्राप्त कर सकता है। नृत्य की वास्तविक शिक्षा के लिए वैज्ञानिक आधार अपनाना होगा।

नृत्य का व्यवसाय :—

नृत्य का व्यवसाय हमारे सामने कई रूपों में आता है। योग्य तथा शिक्षित व्यक्ति शिक्षक बनना पसन्द करते हैं, अच्छे साधक अपनी नृत्य-मण्डली बनाना चाहते हैं

श्रोर घराने के कलाकार स्वतन्त्र प्रदर्शन देना या सिनेमा–जगत् को अपनाने की इच्छा रखते हैं। इसी प्रकार लोक–नर्तक जनसाधारण का मनोरंजन करके अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। आज जिस धन्धे से व्यक्ति निर्वाह नहीं कर सकता, उसकी शिक्षा बेकार मानी जाती है। आज वही शिक्षा उपयुक्त समझी जाती है, जिसके द्वारा बालक कोई धन्धा या व्यवसाय सीख कर उचित प्रकार से जीवन-निर्वाह कर सके। नृत्य का व्यवसाय जीविका–निर्वाह के लिए एक समस्या ही रहा है।

नृत्य की साधना करने वाला व्यक्ति दिन रात साधना करके एक कुशल क कार के रूप में समाज के सामने आता है ताकि उसका व्यवसाय पनक सके। हर सा यही चाहता है कि वह किसी का आश्रित न रहे। अपना तथा अपने परिवार पालन पोषण अच्छी तरह करने के लिए वह कठिन साधना करता है, किन्तु साधना–कलाकार को एकाकी बना देती है। इससे वह व्यावसायिक क्षेत्र में सफल हो पाता। अतः उसे अपनी कला में कुशल तो होना ही चाहिए, साथ ही अपने व्यव के सभी पहलुओं को भी ध्यान में रखना उसके लिए अति आवश्यक है।

प्रत्येक व्यक्ति समाज से बँधा हुआ है। नर्तक भी समाज के साथ है। समा हमारा स्थान, शिक्षा तथा अन्य सभी कार्य हमारे व्यवहार के अनुसार निश्चित हैं। अ कार्य करने वाला व्यक्ति समाज में सम्मान प्राप्त करता है तथा बुरे कार्यों से वह घृ का पात्र बन जाता है। नृत्यकारों में दोनों ही प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। सम उनकी योग्यता या अयोग्यता के अनुसार ही उन्हें स्थान देता है। समाज के हितों लिए कार्य करने वाला तथा समाज–कल्याण में ही अपना कल्याण समझने वा साधक अपनी विशेषताओं से समाज का विकास करने में पूर्ण सहाय हो सकता है। नृत्य–शिक्षा में भी शिक्षक के हृदय में समाज–कल्याण की भाव का होना आवश्यक है।

शिक्षा में नृत्य विषय का सह-सम्बन्ध

संगीत एवं नृत्य विषय सामान्य शिक्षा से बिल्कुल पृथक् है किन्तु वर्तमान पाठ्यक्रम में इनको वैकल्पिक विषय के रूप में स्थान दिया जा चुका है। वर्तमान पाठ्यक्रम को देखने से विदित होता है कि संगीत के अन्तर्गत आने वाली तीनों कलाएँ (गायन, वादन तथा नर्तन) एक होते हुए भी एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् दिखाई देती हैं। गायनकला का विद्वान् वादन व नृत्यकला को पृथक् मानता है। इसी प्रकार वादन तथा नृत्यकला के विद्वान् भी गायनकला को पृथक् समझते हैं। साधारण जन के लिए इन तीनों में विशेष अन्तर दिखलाई नहीं देता। जब इन तीनों कलाओं की सह-शिक्षण योजना नहीं है तो शिक्षा के अन्य विषयों के साथ इनका सह-सम्बन्ध कैसे स्थापित हो सकता है?

भाषा, इतिहास, भूगोल, गणित आदि की शिक्षा के साथ संगीत नृत्य की शिक्षा का सह-सम्बन्ध अति कठिन प्रतीत होता है। परन्तु किसी भी विषय को बिना प्रयत्न किये ही कठिन मान कर छोड़ देना उचित नहीं है। संगीत-नृत्य विषयों को मनोरंजन का साधन माना गया है और शिक्षा शास्त्रियों तथा शिक्षा-विभाग ने सिर्फ ऐच्छिक विषय मान कर विद्यालयों में इन्हें स्थान दिया है। प्राथमिक शाला से लेकर विश्वविद्यालय तक इन विषयों की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था है। इससे सिद्ध होता है कि समाज में इनकी उपयोगिता सिर्फ मनोरंजन तक ही नहीं है परन्तु संगीत-नृत्य की उच्च उपाधि प्राप्त करने वाला व्यक्ति विद्वानों की गणना में आता है। जब यह विषय शिक्षा में साधारण स्तर से लेकर उच्च से उच्च स्थान तक प्राप्त कर चुका है तो अन्य विषयों से इसका सह-सम्बन्ध अवश्यमेव स्थापित किया जा सकता है।

इसका सह–सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता इसलिए भी है कि इस विषय में अतीव आकर्षण है। बालक अन्य विषयों में रुचि ले या न ले किन्तु संगीत के घन्टे में वह बराबर उत्साहित दिखलाई देगा। वर्तमान पाठ्यक्रम तथा दोष पूर्ण संगीत शिक्षण-पद्धति अन्य विषयों से इसका सह-सम्बन्ध स्थापित करने में तत्पर नहीं है। नये ज्ञान को प्राप्त करने के लिए कला को एक मात्र मनोरंजन का साधन न मान कर उसको शिक्षा का एक आवश्यक अंग मानना होगा तभी हमारा उद्देश्य सफल हो सकता है। मनोरंजन के संगीत--नृत्य की शिक्षा हेतु घराना--पद्धति उपयुक्त है, जहाँ ठोक पीट कर वैघराज बनाने का रिवाज है। शिक्षा के क्षेत्र में इन सब बुराइयों को छोड़ कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। संगीत विषय अभी तक एकाकी होने के कारण शिक्षण संस्थाओं में कठिन बना हुआ है, जिनके कारण संगीत–शिक्षक तथा प्रधानाचार्य तक परेशान हैं।

सह–सम्बन्ध स्थापित करने में जल्दबाजी की आवश्यकता नहीं है और न प्रत्येक स्थान पर इसे जबरदस्ती थोपा ही जावे। अगर कहीं जल्द में गलत कदम उठा लिया गया तो अन्य विषयों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ सकता है। सह–सम्बन्ध वहीं तक उचित है, जिससे हमारे उद्देश्य की पूर्ति होती हो। शिक्षा के विषय को सरल व सुगम तरीकों से छात्रों के संमुख प्रस्तुत किया जाना उचित है जिसे वे सुगमता पूर्वक ग्रहण करलें। संगीत–नृत्य आकर्षण के विषय हैं, अतः इनके माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा अवश्य ही आकर्षक होनी चाहिए।

आगे हम उदाहरणार्थ एक रूप रेखा प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे इस विषय के साथ अन्य विषयों का सह--सम्बन्ध प्रकट किया जा सके।

सभी बाल-मन्दिरों और बालवाड़ियों में आज संगीत विषय को अपनाया गया है। बाल कक्षा के लिए निम्न प्रकार से पाठ्यक्रम में गीत रखे हुए हैं :—

(१) बाल्य जीवन सम्बन्धी।

(२) पशु–पक्षियों सम्बन्धी।

(३) राष्ट्र–गीत।

(४) भावप्रधान गीत।

(५) भजन।

(६) प्रयाण गीत आदि।

मुख्य विषय-नृत्य

(उच्च कक्षा, माध्यमिक शाला)

विषय	साहित्य	गणित	भूगोल	इतिहास	चित्रकला	हस्तकला
नृत्य शिक्षा	मीरां का गीत (पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे)	घुंघरुओं की गणना और उनकी बिक्री का हिसाब	मीरां के समय का राजस्थान	मीरां की जीवनी	खड़ताल, इकतारा, घुंघरुओं के चित्र	मीरां की आकृति (प्रतिमा)

इसी प्रकार राष्ट्रीय पर्व, त्यौहार, वीरपुरुष, महान विभूतियां आदि के विषयों को लेकर इस विषय का सह-सम्बन्ध प्रकट किया जा सकता है। अध्यापक अपने अपने विषय के विशेषज्ञ होते हैं। वे चाहें तो इस विषय में सह-सम्बन्ध स्थापित करके वर्तमान शिक्षण--विधि में एक नया मोड़ दे सकते हैं। संगीत-अध्यापक को चाहिए कि वह अपने विषय को विशेष आकर्षक बनाने के लिए नये नये प्रयोग करे। इस प्रकार वर्तमान संगीतशिक्षण पद्धति में विशेष परिवर्तन करके उसे नया रूप देने की नितान्त आवश्यकता है।

सह-सम्बन्ध विधि

कुशल अध्यापक अपने विषय को अन्य विषयों से चतुराई के साथ संबंधित करके अधिक सरस एवं रोचक बना देता है। इससे छात्र मूल विषय के साथ साथ अन्य विषयों का भी लाभ उठा सकते हैं। संगीत-नृत्य स्वयं सरस हैं किन्तु आज इस विषय

का अध्यापक अपने विषय से उदासीन तथा उखड़ा हुआ सा नजर आ रहा है। जब अध्यापक में ही नीरसता व्याप्त है तो बालकों में सजीवता कैसे उत्पन्न होगी ? इसी कारण संगीत तथा नृत्य सीखने में अति कठिन विषय बन गये हैं।

नृत्यकला की शिक्षा के साथ विविध विषयों को दो प्रकार से सबंधित किया जा सकता है :–

(१) आकस्मिक

(२) व्यवस्थित

१. आकस्मिक

आकस्मिक रूप में किसी प्रकार की पाठ-योजना नहीं करनी पड़ती और न कोई निश्चित रूप रेखा ही बनाई जाती है। यदि कक्षा मे विषय के साथ कोई प्रसग आ जाता है तो उसी के अनुसार अन्य विषय के साथ उसका सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर हम राधा–कृष्ण नृत्य को लेते हैं। इस नृत्य में स्थान-स्थान पर यमुना का वर्णन आता है। यमुना तट का वर्णन प्रस्तुत करते समय अध्यापक इतिहास, भूगोल तथा साहित्य में आसानी से प्रवेश कर सकता है। कृष्ण के साथ साथ सूर व मीरां के साहित्य का लाभ सहज ही उठाया जा सकता है। महाभारत के साथ भी इस विषय को संबधित करके इतिहास का ज्ञान कराने मे भी कोई दिक्कत नहीं आती। इसी प्रकार भूगोल विषय के लिये यमुना का वर्णन करते समय हिमालय से लेकर त्रिवेणी तक का सम्बन्ध स्थापित कर पुनः अपने विषय मे प्रवेश किया जा सकता है।

आज का कत्थक–नृत्य, राधा-कृष्ण की लीलाओ से प्रभावित है। इसी विषय को लेकर नृत्य–शिक्षक अन्य विषयों का ज्ञान भी अधिक से अधिक दे सकता है। परन्तु नृत्य–शिक्षा सिर्फ मनोरंजन हेतु दी जावे तो इस शिक्षा के साथ अन्य विषयों का सम्बन्ध बहुत ही अटपटा सा प्रतीत होगा। वास्तव मे देखा जाए तो शिक्षा का सही उद्देश्य तभी सफल माना जाएगा, जब इसमे विभिन्न विषयों का सह–सम्बन्ध स्थापित कर उसे सरस एवं रोचक बनाया जा सकेगा।

शिक्षा के क्षेत्र में नृत्य–शिक्षा का बहुत बड़ा महत्व है। इस प्रकार नृत्य की शिक्षा के समय आकस्मिक रूप से राधा–कृष्ण नृत्य के साथ विभिन्न विषयों का सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। पाठ के प्रारम्भ में इस प्रकार की कोई योजना नहीं बनाई गई

थी। पूर्व योजना नहीं थी कि नृत्य का पाठ पढ़ाते समय साहित्य, इतिहास तथा भूगोल का लाभ भी उठाया जावे किन्तु प्रसंगवश यह लाभ नृत्य शिक्षा के माध्यम से हुआ।

२. व्यवस्थित

व्यवस्थित रूप में अध्यापक पहले से ही पाठ-योजना बना कर कक्षा में पढ़ाने आता है। निश्चित योजनानुसार अपने विषय के साथ अन्य विषयों में प्रवेश करता हुआ वह पुनः अपने विषय में आ जाता है। जैसे:– नृत्य शिक्षा में पाठ्य–विषय गंगावतरण नृत्य है। साहित्य से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए इस विषय की कविता ली जा सकती है। इतिहास अथवा पुराण ज्ञान के लिए भागीरथ की कथा और उससे संबंधित घटनाओं का बोध कराया जा सकता है। भौगोलिक ज्ञान हेतु गंगा नदी के प्रवाह का क्षेत्र और आसपास की उपजाऊ भूमि, पेड़-पौधों आदि की जानकारी कराते हुए पुनः मुख्य विषय में प्रवेश कर पाठ को समाप्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार नृत्यकला से अन्य विषयों का सह–सम्बन्ध स्थापित करके विद्यार्थियों को विशेष ज्ञान दिया जा सकता है। शिक्षक को चाहिए कि वह शिक्षा देते समय मूल विषय को लक्ष्य मान कर अन्य विषयों में इतना ही बढ़े जिससे कि मूल विषय गौण न हो जाए। पाठ्य विषय सरस व रोचक बना रहे, यही दृष्टिकोण रखते हुए अध्यापक को पाठ योजना बनानी चाहिए।

प्राथमिक शाला के कक्षा–अध्यापक प्रायः सभी विषयों की अपेक्षित जानकारी रखते हैं। अतः वे विभिन्न विषयों का सह–सम्बन्ध आसानी से स्थापित कर सकते हैं। परन्तु उच्च कक्षाओं के अध्यापक अपने विषय के विशेषज्ञ होते हैं। अतः उनके लिए व्यवस्थित रूप से पाठ योजना बना कर ही शिक्षा देना अधिक उपयुक्त होगा।

आगे इस विषय में विस्तार से प्रकाश डाला जाता है जिससे कि यह सर्वथा स्पष्ट एवं सुगम हो सके।

भाषा–शिक्षा

भाषा– शिक्षा का यह प्रथम उद्देश्य है कि बालक अपनी भाषा या बोली द्वारा अपने भावों को सही और स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सके, जिससे कि श्रोता उससे प्रभावित

हो जाए। भाषा ज्ञान का दूसरा आवश्यक अंग यह है कि लिखी हुई या कही हुई बात को बालक स्वयं सही तरीके से पढ़ सके और लिख सके।

भाषा के विद्वानों का मत है कि प्रारम्भिक कक्षाओं में भाषा-ज्ञान मौखिक रूप से कराना उचित है। मौखिक ज्ञान में व्याकरण की दृष्टि से भाषा सिखाना, शब्दों का सही अर्थ बतलाना तथा स्पष्ट उच्चारण करवाना सम्मिलित है। इसके लिए नृत्य में काम आने वाले शब्द एवं गीत काफी सहायक हो सकते हैं।

घुंघरुओं के प्रारम्भिक बोल साधारण होते हैं। किन्तु जब इनका उपयोग नृत्य कला में किया जाता है तो इन बोलों में विविधता पाई जाती है। इन बोलों के साथ जब पद-संचालन किया जाता है तो एक चमत्कार-पूर्ण वातावरण बन जाता है।

नर्तक (कथक) नृत्य के बोलों को प्रदर्शन करने से पूर्व बोल कर दर्शकों को सुनाता है। इसके पश्चात् उन्हीं बोलों को वह पैरों से निकालता है और नृत्य करता है। बोलों को नृत्य से पूर्व बोलने की क्रिया को 'पढ़न्त' कहते हैं। 'पढ़न्त' में बोलों को रस एवं भाव के अनुसार उतार-चढ़ाव को ध्यान में रख कर पढ़ा जाता है, जिससे जबान साफ होती है।

भाषा-शिक्षा में अगर नृत्य को स्थान दिया जावे तो बालक का ज्ञान अधिक विस्तृत होगा और वह इस नवीन विधि, जो खेल के समान है, अच्छी जानकारी प्राप्त कर लेगा। नृत्य के साथ भाषा का समन्वय कर देने से बालक को निम्न लाभ होंगे:—

(१) किसी भी शब्द को याद करने में सुविधा होगी।

(२) कविता कहने का तरीका लयबद्ध बनेगा।

(३) जबान का लड़खड़ाना या तुतलापन दूर होगा।

(४) शब्दों के स्पष्ट उच्चारण का अभ्यास होगा।

(५) रस एवं भावों की अभिव्यक्ति की योग्यता प्राप्त होगी।

(६) नृत्य कला का ज्ञान होगा।

थी। पूर्व योजना नहीं थी कि नृत्य का पाठ पढ़ाते समय साहित्य, इतिहास तथा भूगोल का लाभ भी उठाया जावे किन्तु प्रसंगवश यह लाभ नृत्य शिक्षा के माध्यम से हुआ।

२. व्यवस्थित

व्यवस्थित रूप में अध्यापक पहले से ही पाठ-योजना बना कर कक्षा में पढ़ाने आता है। निश्चित योजनानुसार अपने विषय के साथ अन्य विषयों में प्रवेश करता हुआ वह पुनः अपने विषय में आ जाता है। जैसे:– नृत्य शिक्षा में पाठ्य–विषय गंगावतरण नृत्य है। साहित्य से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए इस विषय की कविता ली जा सकती है। इतिहास अथवा पुराण ज्ञान के लिए भागीरथ की कथा और उससे संबंधित घटनाओं का बोध कराया जा सकता है। भौगोलिक ज्ञान हेतु गंगा नदी के प्रवाह का क्षेत्र और आसपास की उपजाऊ भूमि, पेड़-पौधों आदि की जानकारी कराते हुए पुनः मुख्य विषय में प्रवेश कर पाठ को समाप्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार नृत्यकला से अन्य विषयों का सह–सम्बन्ध स्थापित करके विद्यार्थियों को विशेष ज्ञान दिया जा सकता है। शिक्षक को चाहिए कि वह शिक्षा देते समय मूल विषय को लक्ष्य मान कर अन्य विषयों में इतना ही बढ़े जिससे कि मूल विषय गौण न हो जाए। पाठ्य विषय सरस व रोचक बना रहे, यही दृष्टिकोण रखते हुए अध्यापक को पाठ योजना बनानी चाहिए।

प्राथमिक शाला के कक्षा–अध्यापक प्रायः सभी विषयों की अपेक्षित जानकारी रखते हैं। अतः वे विभिन्न विषयों का सह–सम्बन्ध आसानी से स्थापित कर सकते हैं। परन्तु उच्च कक्षाओं के अध्यापक अपने विषय के विशेषज्ञ होते हैं। अतः उनके लिए व्यवस्थित रूप से पाठ योजना बना कर ही शिक्षा देना अधिक उपयुक्त होगा।

आगे इस विषय में विस्तार से प्रकाश डाला जाता है जिससे कि यह सर्वथा स्पष्ट एवं सुगम हो सके।

भाषा–शिक्षा

भाषा– शिक्षा का यह प्रथम उद्देश्य है कि बालक अपनी भाषा या बोली द्वारा अपने भावों को सही और स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सके, जिससे कि श्रोता उससे प्रभावित-

हो जाए। भाषा ज्ञान का दूसरा आवश्यक अंग यह है कि लिखी हुई या कही हुई बात को बालक स्वयं सही तरीके से पढ़ सके और लिख सके।

भाषा के विद्वानों का मत है कि प्रारंभिक कक्षाओं में भाषा-ज्ञान मौखिक रूप में कराना उचित है। मौखिक ज्ञान मे व्याकरण की दृष्टि से भाषा सिखाना, शब्दों का सही अर्थ बतलाना तथा स्पष्ट उच्चारण करवाना सम्मिलित है। इसके लिए नृत्य में काम आने वाले शब्द एवं गीत काफी सहायक हो सकते हैं।

घुंघरुओं के प्रारम्भिक बोल साधारण होते हैं। किन्तु जब इनका उपयोग नृत्य कला में किया जाता है तो इन बोलों मे विविधता पाई जाती है। इन बोलो के साथ जब पद-संचालन किया जाता है तो एक चमत्कार-पूर्ण वातावरण बन जाता है।

नर्तक (कथक) नृत्य के बोलों को प्रदर्शन करने से पूर्व बोल कर दर्शकों को [illegible] जाता है। इसके पश्चात् उन्हीं बोलो को वह पैरों से निकालता है और नृत्य करता है। बोलो को नृत्य से पूर्व बोलने की क्रिया को 'पढन्त' कहते हैं। 'पढन्त' में बोलों को [illegible] एवं भाव के अनुसार उतार-चढ़ाव को ध्यान में रख कर पढ़ा जाता है, जिससे जबान [illegible] होती है।

भाषा-शिक्षा मे अगर नृत्य को स्थान दिया जावे तो बालक का ज्ञान अधिक [illegible] होगा और वह इस नवीन विधि, जो खेल के समान है, अच्छी जानकारी प्राप्त कर [illegible]गा। नृत्य के साथ भाषा का समन्वय कर देने से बालक को निम्न लाभ होंगे:—

(१) किसी भी शब्द को याद करने मे सुविधा होगी।

(२) कविता कहने का तरीका लयबद्ध बनेगा।

(३) जबान का लड़खड़ाना या तुतलापन दूर होगा।

(४) शब्दों के स्पष्ट उच्चारण का अभ्यास होगा।

(५) रस एवं भावो की अभिव्यक्ति की योग्यता प्राप्त होगी।

(६) नृत्य कला का ज्ञान होगा।

यदि बालक का विकास नृत्य द्वारा भाषा ज्ञान करवाने में होता है तो नृत्य-शिक्षकों को इसका पूर्ण ध्यान रख कर शिक्षा देनी चाहिये। प्रारम्भिक कक्षाओं में सीधी सीधी कवितअंग की नृत्य रचना या नृत्य-नाटिका द्वारा बालक को भाषा की शिक्षा दी जावे। इसमें निम्न प्रकार की कविता व बोल हों:-

(१) बाल्य जीवन संबंधी।

(२) पशु-पक्षियों पर आधारित।

(३) देश प्रेम की कथाएँ नृत्य-नाटिका के रूप में।

कई बालक तुतलाकर बोलते हैं। वे 'क' को 'ट' और 'र' को 'ड़' के रूप में प्रयोग करते हैं। नृत्य में इन्ही शब्दों का अधिक प्रयोग होता है जैसे :- तक,तक,तकिट, झिनकिट आदि। इसी प्रकार 'रेफ' के प्रयोग में खररर, *क्रान, त्राम, थररर* आदि। बारम्बार क और र का उपयोग किया जायेगा तो बालक इन अक्षरों को सुधार कर बोलने लगेगा। इससे उसका तुतलापन दूर होगा।

जिन बालकों में लजाने या झेंपने की आदत है, वे नृत्य के माध्यम से इस दोष से मुक्त हो सकते हैं। उनके लिये नृत्य एक खेल होगा। खेल-खेल में उनकी झेंपने की आदत दूर हो जाएगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा ज्ञान के लिये नृत्य व उसके बोल बालक के विकास में हर प्रकार से सहायक हैं। नृत्य से शरीर के सभी अंगों का संतुलित व्यायाम होता है। उससे मानसिक सुख मिलता है। मनोभाव स्पष्ट होते हैं। अतः इस कला का स्थान शिक्षा में रखा जाना *अति आवश्यक है*।

प्रत्येक कार्य में कठिनाई आती है। नृत्य के माध्यम से बालक को भाषा ज्ञान कराने में कई प्रकार की कठिनाइयां आ सकती हैं। जैसे:—

(१) कोई बालक भाषा को गौण समझ कर नृत्य में अधिक रुचि लेगा।

(२) कुछ बालक शीघ्र ही विषय को अपना लेंगे।

(३) मन्दबुद्धि बालक चुप्पी साधे खड़े रहेंगे।

इस प्रकार कक्षा के विभिन्न प्रकृति के बालकों का समूह हमारे सामने कई प्रकार
की दिक्कतें उपस्थित कर सकता है।

कठिनाइयाँ दूर होती है। योग्य शिक्षक उन्हें आसानी से दूर कर सकता है।
मारा उद्देश्य इस कक्षा में नृत्य के द्वारा भाषा-ज्ञान करवाना है। नृत्य स्वयं रोचक
य है। अतः इसके माध्यम से जो भी बात हम बालक के सम्मुख रखेंगे, उसे वह शीघ्र
ग्रहण कर लेगा। हमें यहाँ भाषा को मुख्य विषय मान कर नृत्य को सहयोगी विषय
ना है। अगर नृत्य प्रमुख विषय बन गया तो भाषा ज्ञान में किसी प्रकार का सबध
नहीं रह जाता है क्योंकि नृत्य-कला मनोरंजन का विषय है।

गणित-शिक्षा

मानव जीवन में गणित का ज्ञान बहुत आवश्यक है। गिनती की आवश्यकता
जीवन के हर कार्य में पड़ती ही रहती है। वस्तु की कमी व अधिकता का बोध गिनती
द्वारा होता है। भारतीय संगीत एव नृत्य विषय को सीखने के लिए मात्राओं की गिनती
हत्वपूर्ण स्थान रखती है। नृत्य का प्राण लय है और लय की आधारशिला मात्राएँ।
मात्राओं में बधे तोड़े, टुकड़े, परनें ही नृत्य की विशेषता है।

मात्राओं का ज्ञान 'गिनतकारी' (गिनती) पर आधारित है। सर्व प्रथम बालक को
पद संचालन में एक, दो, तीन, चार की गिनती पर नृत्य शिक्षा दी जाती है। नृत्य की
शिक्षा में यहीं से गणित का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। गणित के द्वारा नृत्य-शिक्षा का
प्रारम्भिक रूप यही है. चाहे वह बालक हो या बड़ा। प्रत्येक विद्यार्थी को १, २, ३, ४
की संख्या में पद-संचालन की शिक्षा लेनी होती है।

लयकारी —

इस प्रकार १, २, ३, ४ की संख्या से विभिन्न लय प्रदर्शित करने पर
गणित-ज्ञान का रूप बढ़ता जाता है। २ में ३ गिनना, ३ में ४, ४ में ३ आदि
कार्य इसमें बढ़ते हैं और नर्तक विभिन्न तालों में सुगमता से नृत्य करता है। संगीत
में लयकारी का अभ्यास कठिन है। लय पर जिसने अधिकार प्राप्त कर लिया, वह
संगीत का विद्वान् माना जाता है। जब नृत्य व संगीत जैसे रोचक विषय में गणित-

का ज्ञान कराने की आवश्यकता है तो उसे भी शिक्षा में स्थान देकर गणित विषय की शिक्षा में उसका सहयोग लेना चाहिए।

नृत्यकला स्वयं मनोरंजन करने वाला खेल है और ताल का बन्धन शास्त्रीय-स्वरूप है, जो इस कला की पूरी गणित है। अगर मात्रा व लय को गणित की शिक्षा के साथ समन्वय कर खेल-प्रधान-पद्धति का रूप दे दिया जावे तो गणित की शिक्षा काफी रोचक बन सकती है। अपढ़ कलाकारों को इसी गणित (ताल व लय) में अपने स्वरों को बिठाने में वर्षों व्यतीत हो जाते थे, जबकि आज का पढ़ा-लिखा कलाकर शीघ्र ही अपने विषय को तालबद्ध कर लेता है। नृत्य में गणित है। अगर गणित को भी नृत्य के माध्यम से सीखा जावें तो विद्यार्थी इसे आनन्द पूर्वक अपना लेगा।

पढ़न्त मौखिक कार्यः—

संगीत नृत्य में मौखिक शिक्षा की प्रधानता है। इसी प्रकार गणित का ज्ञान कराने में भी मौखिक कार्य का महत्त्व अधिक है। मौखिक ज्ञान कम से कम समय में सरलता पूर्वक सिखाया जा सकता है। मौखिक ज्ञान के द्वारा बालक कठिन से कठिन समस्याओं को कम से कम समय में हल करने का अभ्यस्त हो जाता है। प्रारम्भ में छोटे छोटे प्रश्नों को हल कराया जावे फिर धीरे धीरे कठिन समस्याओं को हल कराना चाहिये।

गिनती और घुंघरू

गिनती का ज्ञान गोलियों या कौड़ियों के द्वारा कराया जाता है। गोलियों की कम व अधिक संख्या का ज्ञान बालक गिनती के द्वारा जानने की चेष्टा करता है। आज के विद्यालयों में गोलियों के फ्रेम बने हुए हैं, जिनसे गणित की शिक्षा दी जाती है। गोलियों को आगे--पीछे खिसका कर गिनती का ज्ञान कराया जाता है, जो मनोवैज्ञानिक आधार पर उचित है। किन्तु इस समय बालक के मस्तिष्क पर भार पड़ता है और वह विषय का ज्ञान करने में सुस्त दिखलाई पड़ता है। अगर इन्हीं गोलियोंके स्थान पर बालक को घुंघरू लगा हुआ फ्रेम संख्याओं की जानकारी के लिए दिया जावे तो वह अधिक उपयोगी होगा। जो कार्य गोली करेगी, उसकी पूर्ति घुंघरू कर देंगे। इसके साथ एक विशेषता इन घुंघरुओं में यह रहेगी कि ये साथ साथ ध्वनि भी देते रहेंगे, जो बालक के मस्तिष्क को शान्ति प्रदान करेगी। इस प्रकार घुंघरुओं का यह खेल शिक्षा में रजकता प्रदान करेगा।

... प्रकार गणित का विषय कठिन बनता जाता है उसी प्रकार संगीत को
न की दृष्टि से क्रमानुसार कठिन बनाती जाती है। कठिन सरगमों को अभ्यास से
पूर्ण किया जाता है। इसी प्रकार कठिन सवालों को भी अभ्यास द्वारा शीघ्र ही
हल कर लिया जाता है। कठिन लय में दो में तीन, तीन में चार, चार में
इस प्रकार मात्राओं (सहजाओं) को निश्चित लय में प्रदर्शित करना होता है। ऐसा
स्वरूप का प्रदर्शन करना उच्च कला की श्रेणी में माना गया है। अतिरिक्त
व्यक्तियों के लिए यह कार्य नीरस स्वरूप दिखाई देता है। यही सब घबराहट करने पर
ते हैं इस क्रिया में रुचि नहीं लेते हैं क्योंकि उनका ध्येय सिर्फ मनोरंजन तक ही रहता है।

लय व मात्राओं की शिक्षा गणित का रोचक स्वरूप है। अगर गणित को
ग को संगीत से सम्बद्ध बना कर शिक्षा के साथ समायोजित कर दिया जाये तो
गणित जैसे शुष्क विषय में रोचकता आ जायेगी। घुंघरू उसी वातावरण को सरस व
रोचक बना देंगे।

घुंघरुओं के द्वारा गिनती से लेकर जोड़ बाकी, गुणा, भाग तक आसानी से
ये जा सकते हैं। प्राथमिक शाला तक के बालक इनसे जो ध्वनि का ज्ञान प्राप्त
गे, वे ध्वनियाँ उनके लिए उच्च श्रेणी में संगीत व नृत्य को सीखने में अधिक सहा-
होगी। गणित के साथ साथ उनके मस्तिष्क को ध्वनि विशेष का भी बोध होगा। प्रार-
ध्वनि-बोध के लिए सिर्फ तीन ही स्वरों पर विशेष जोर दिया जाये तो बालकों
स्वर ज्ञान पूर्णतः पक्का हो जाएगा और वे इन ध्वनियों को अच्छी तरह पहिचान
सकेंगे। इन स्वरों में सा ग और प को लेना चाहिए। इन तीनों स्वरों की ध्वनियाँ
एक दूसरे से काफी दूर हैं, जिन्हें आसानी से समझाया जा सकता है।

नृत्य व संगीत में जो कल्पना की जाती है, वह सब गणित से सम्बन्धित है।
बारम्बार तान, तोड़े, परनों की क्रियाओं को करके कलाकार 'सम' पर आता है। सम का
ही प्रकार से दिखाना आनन्ददायक है। दर्शक, श्रोता और कलाकार तीनों को एक
थ इस स्थान पर आनन्द मिलता है। कलाकार अपनी कल्पना द्वारा विभिन्न उड़ानें
ता है। इन उड़ानों में वह निश्चित लय के क्षेत्र को छोड़ जाता है। किन्तु जब वह
अपने स्थान पर पहुँच कर सम पर मिलता है तो कला का आनन्द प्रकट होता है।
उड़ानों में गणित का पूर्ण प्रभाव होता है। उड़ानें उद्देश्यहीन नहीं होतीं। उनमें
नियमित बन्धन होते हैं जिनके आधार पर ही कलाकार पुनः अपने स्थान पर

चन्द्रलोक में जाने वाले यात्रियों की तरह संगीत लोक में विचरने वाला कला-साधक गणित से परे नहीं है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि कला साधकों ने गणित को शिक्षा से पृथक् समझ कर साधना की है। अतः वे इसकी साधना में अधिक समय खर्च कर देते हैं तथा कभी कभी अज्ञानता के कारण उनकी कल्पना समय पर गलत भी हो सकती है। अतः आवश्यक है कि कला और शिक्षा दोनों का सम्मिश्रण कर शिक्षा की व्यवस्था की जावे तो ये एक दूसरे के पूरक होकर शिक्षा के क्षेत्र में लाभदायक हो सकते हैं। बिना गणित के संगीत व नृत्य का ज्ञान अधूरा है और बिना संगीत, नृत्य के गणित की शिक्षा शुष्क है।

ताल-ज्ञान :—

संगीत व नृत्य में ताल-ज्ञान ही प्रमुख है, जिसमें गणित का पूरा स्वरूप मिलता है। ताल-ज्ञान के लिए हाथों से ताली देकर समय के बन्धन की जानकारी कराई जाती है। १६ मात्रा की गिनती को तीनताल कहा गया है, जिसके चार चार मात्राओं के चार भाग किये जाकर हर भाग की प्रथम मात्रा पर हाथों का संकेत किया जाता है। ९ वीं मात्रा का संकेत 'खाली' का बोध कराता है तथा १, ५ व १३ वीं मात्रा पर ताली लगाई जाती है। इस प्रकार इस ताल में तीन स्थानों पर ताली लगाई जाती है। इसी कारण इसका नाम 'तीनताल' रखा गया है। तीनताल का महत्व भारतीय संगीत एवं नृत्य में सर्वाधिक है।

यदि चार मात्रा की गिनती से बालकों को तीनताल का खेल खिलाया जावे तो उनको शीघ्र ही ताल-ज्ञान हो सकता है। १, २, ३, ४ की लयबद्ध गिनती करके संख्या ३ पर खाली को बताइये तथा १, २ व ४ की संख्या पर ताली लगाइये। इस प्रकार आसानी से तीनताल का ज्ञान बालक कर लेंगे। यह क्रिया बाद में आठ मात्राओं तथा सोलह मात्राओं में की जाने पर बालक को मध्य, द्रुत एवं विलंबितलय का ज्ञान कराने में भी सहायक होगी।

भूगोल-शिक्षण

नृत्य कला के द्वारा बालक को भौगोलिक ज्ञान दिये जाने की बात शिक्षा-शास्त्रियों को आश्चर्यजनक मालूम देगी किन्तु नृत्य के साथ भूगोल विषय सम्बन्धित है।

अतः हमें नृत्य को इस विषय में अलग नहीं समझना चाहिये। किसी भी विषय का विस्तृत ज्ञान करने के लिये अन्य विषयों की जानकारी भी होनी आवश्यक है। सांस्कृतिक क्षेत्र को भूगोल से पृथक् नहीं किया जा सकता। भूगोल का जितना सम्बन्ध विज्ञान से है, उतना ही कला में भी है। मनुष्य के जीवन में दोनों ही विषयों का पूर्ण महत्व है। अगर नृत्य को अलग विषय मान कर शिक्षा दी जावे तो बालक का चहुमुखि विकास नहीं हो सकता। आज के वैज्ञानिक युग में कला और विज्ञान का समन्वय बहुत ही सुन्दर ढंग से किया जा सकता है।

हम पृथ्वी पर रहते हैं। हमारे सभी कार्य इसी धरती पर होते हैं। अतः इस पृथ्वी के बारे में जानना हमारे लिये जरूरी है। यह जानकारी करने के लिये हमें भूगोल शिक्षण की आवश्यकता होती है। भूगोल से हम पृथ्वी, वायु, नदी, समुद्र, द्वीप, महा-द्वीप, पशु-पक्षी एवं मानव के रहन-सहन के बारे में परिचय प्राप्त करते हैं। भूगोल के माध्यम से और भी बहुत सी बातें हमें ज्ञात होती हैं।

नृत्य एक कला है, जिसका उद्देश्य मनोरंजन करना है। इस कला का इतिहास बहुत पुराना है। वैदिक काल से चली आ रही इस कला में युगानुसार परिवर्तन आए। आज इसका प्रचार घर घर में है। शिक्षण संस्थाओं में इसको पाठ्य विषय मानकर शिक्षाशास्त्रियों ने अपनाया है। आज हम भारत की सर्वांगीण उन्नति देखना चाहते हैं। अंग्रेजी राज्य में ललितकलाओं को पाठ्य विषयों में कोई महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं था। स्वतन्त्रता के साथ ही परिवर्तन आया और कला घर घर में पहुंच कर सम्मान प्राप्त करने लगी। आज नृत्य के बिना स्कूल का उत्सव नीरस तो बालक की वर्षगांठ भी नीरस। आज सरसता देने के लिये नृत्य-संगीत हर स्थान पर समाज का एक आवश्यक अंग बन गया है। इसीलिये समाज ने इस कलात्मक विषय को शिक्षा में स्थान दिया है।

शिक्षा

नृत्य सीख कर मनोरंजन करना, यह बात अच्छी तरह समझ में आती है किन्तु नृत्य के द्वारा भौगोलिक ज्ञान कराना वास्तव में नई बात है। इस विषय पर विचार करना है। नृत्य में मुख्य रूप से दो प्रकार की बातों का ज्ञान होना है :-

(१) शारीरिक अवयवों द्वारा भाव-प्रदर्शन।

(२) रंगमंच द्वारा वातावरण उपस्थित करना।

भाव–प्रदर्शन की क्रिया में उन सभी वस्तुओं के भावों को बताना होता है, जिनके साथ कथानक सम्बन्धित है। कथानक धार्मिक,ऐतिहासिक तथा सामाजिक विषयों में से होते हैं। इन कथानकों को प्रदर्शित करने के लिए रंगमंच की आवश्यकता रहती है। रंगमंच पर उन दृश्यों की व्यवस्था की जाती है, जो उक्त कथानक से सम्बन्धित है।

धार्मिक कथानक :—

नृत्य का प्रारंभ ही इन्हीं कथानकों के प्रदर्शन हेतु हुआ। हमारे देश में मनुष्य को धार्मिक भावनाओं के प्रति बराबर जागरूक रखने हेतु नृत्य को भी आवश्यक समझा गया। इन कथाओं में शिव–पार्वती, सीता–राम, राधा–कृष्ण, विष्णु–लक्ष्मी आदि अवतारों को लिया गया।

जब हम नृत्य के द्वारा किसी विषय को रंगमंच पर प्रस्तुत करते हैं तो हमें रंगमंच को उसी कथानक के आधार पर सजाना पड़ता है। इस सजावट में हमें तभी सफलता प्राप्त हो सकती है जब हम उक्त कथानक का भौगोलिक ज्ञान रखते हों।

भौगोलिक आधार पर सजे रंगमंच पर हमें पहाड़, नदी–नाले, पेड़--पौधे आदि देखने को मिलेंगे। शिव–ताण्डव नृत्य के समय रंगमंच पर पहाड़ी दृश्य होगा, गंगाव--तरण–नृत्य के समय पहाड़, नदी और पेड़–पौधों का दृश्य होगा, केवट–संवाद–नृत्य के समय नदी और नाव का दृश्य होगा। इस प्रकार नृत्यकला के माध्यम से जैसा कथानक होता है बालक उस समय का वातावरण, रहन--सहन, वेशभूषा आदि का ज्ञान प्राप्त करता है। साथ ही नृत्य की शिक्षा में मुद्राओं के द्वारा उन वस्तुओं के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है, जिनका सम्बन्ध कथानक से होता है।

ऐतिहासिक कथानक :—

इन कथानकों में ऐसे नृत्य आते हैं, जिनका सम्बन्ध ऐतिहासिक घटनाओं से होता है। इस प्रकार की नृत्य–नाटिकाओं का अभी अभाव है। फिर भी कुछ नृत्यकारों ने इस ओर प्रयास किये हैं। ऐसे नृत्य--प्रदर्शनों के अन्तर्गत इन नृत्यों को लिया जा सकता है– केसरिया पगड़ी, हमीर हठ, दुर्गादास, अमरसिंह राठौड़ आदि। इन कथा–नकों के आधार पर इतिहास के साथ–साथ बालक को भौगोलिक ज्ञान भी होता है और उस समय के रहन–सहन, वेश--भूषा, राज्य--व्यवस्था आदि की जानकारी कराई जा सकती है।

सामाजिक कार्यक्रम :—

हम समाज में रहते हैं। समाज के साथ हमारा सभी प्रकार का सम्बन्ध है। इससे पृथक् मानव एकाकी रूप में नहीं रह सकता। अतः सामाजिक जीवन का ज्ञान बालक के लिए अति आवश्यक है। सामाजिक जीवन की झांकियों का प्रदर्शन नृत्य द्वारा किया जा सकता है। जिसके आधार पर भौगोलिक ज्ञान भी दिया जा सकता है। ऐसे नृत्यों के अनेक नृत्य-नाटिकाएं समाज के सम्मुख प्रस्तुत भी की जा चुकी हैं जैसे 'मशीन और मानव', 'हरियाला भारत', 'लहरों का विराग', 'श्रम ही जीवन है' आदि आदि।

रंगमंच ऐसा साधन है, जिसके द्वारा सभी युगों का सजीव स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके माध्यम से सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि सभी बातों का सम्पूर्ण चित्र दिखाया जा सकता है। अतः बालक को भौगोलिक ज्ञान कराने के लिए रंगमंच बहुत ही उपयुक्त साधन है, पर इसका उपयोग कोई करना जाने या कर सके।

भूगोल की शिक्षा के लिए संसार का गोलक (ग्लोब) काम में लिया जाता है। इसके द्वारा पृथ्वी की जानकारी दी जाती है। परन्तु रंगमंच पर कथानक के आधार पर दृश्यों को बनाना पड़ता है ताकि कला-प्रदर्शन का प्रभाव दर्शकों पर पड़े। इन सबसे बालक प्राकृतिक भूगोल का ज्ञान आसानी से प्राप्त कर सकता है।

नृत्य में घुंघरुओं का प्रयोग अनिवार्य है। घुंघरू किसी न किसी धातु से बने होते हैं और इन धातुओं का स्थान पृथ्वी है। नृत्य की शिक्षा के साथ अगर इन धातुओं की जानकारी भी दे दी जावे तो हमारा भूगोल-शिक्षा का उद्देश्य भी सम्पन्न हो जाता है। नृत्य द्वारा मनोरंजन करने के साथ-साथ अगर बालक उससे संबंधित वस्तुओं का ज्ञान भी कर लेता है तो उसके विकास में वृद्धि ही होगी। इसी प्रकार नृत्य के साथ बजने वाले वाद्य-यंत्रों की बनावट, उनको बनाने संबंधी जानकारी तथा अन्य आवश्यक बातें भी सिखाना आवश्यक है। नृत्य की कक्षा में उन पेड़ों का ज्ञान जिनसे बांसुरी, तबला, सारंगी, सितार आदि वाद्य बनते हैं, करवाना उचित है।

नृत्यकला में वेशभूषा के माध्यम से मानव के दैनिक जीवन की जानकारी दी जानी चाहिये। इससे बालक मानव के रहन-सहन आदि का ज्ञान प्राप्त करता है। अन्य देशों की वेशभूषा की जानकारी के लिये उन देशों के कार्यक्रमों द्वारा वहां की सभ्यता

भाव–प्रदर्शन की क्रिया में उन सभी वस्तुओं के भावों को बताना होता है, जिनके साथ कथानक सम्बन्धित है। कथानक धार्मिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक विषयों में से होते हैं। इन कथानकों को प्रदर्शित करने के लिए रंगमंच की आवश्यकता रहती है। रंगमंच पर उन दृश्यों की व्यवस्था की जाती है, जो उक्त कथानक से सम्बन्धित है।

धार्मिक कथानक :—

नृत्य का प्रारंभ ही इन्हीं कथानकों के प्रदर्शन हेतु हुआ। हमारे देश में मनुष्य को धार्मिक भावनाओं के प्रति बराबर जागरूक रखने हेतु नृत्य को भी आवश्यक समझा गया। इन कथाओं में शिव–पार्वती, सीता–राम, राधा–कृष्ण, विष्णु–लक्ष्मी आदि अवतारों को लिया गया।

जब हम नृत्य के द्वारा किसी विषय को रंगमंच पर प्रस्तुत करते हैं तो हमें रंगमंच को उसी कथानक के आधार पर सजाना पड़ता है। इस सजावट में हमें तभी सफलता प्राप्त हो सकती है जब हम उक्त कथानक का भौगोलिक ज्ञान रखते हों।

भौगोलिक आधार पर सजे रंगमंच पर हमें पहाड़, नदी–नाले, पेड़--पौधे आदि देखने को मिलेंगे। शिव–ताण्डव नृत्य के समय रंगमंच पर पहाड़ी दृश्य होगा, गंगाव--तरण–नृत्य के समय पहाड़, नदी और पेड़–पौधों का दृश्य होगा, केवट–संवाद–नृत्य के समय नदी और नाव का दृश्य होगा। इस प्रकार नृत्यकला के माध्यम से जैसा कथानक होता है बालक उस समय का वातावरण, रहन--सहन, वेशभूषा आदि का ज्ञान प्राप्त करता है। साथ ही नृत्य की शिक्षा में मुद्राओं के द्वारा उन वस्तुओं के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है, जिनका सम्बन्ध कथानक से होता है।

ऐतिहासिक कथानक :—

इन कथानकों में ऐसे नृत्य आते हैं, जिनका सम्बन्ध ऐतिहासिक घटनाओं से होता है। इस प्रकार की नृत्य–नाटिकाओं का अभी अभाव है। फिर भी कुछ नृत्यकारों ने इस ओर प्रयास किये हैं। ऐसे नृत्य--प्रदर्शनों के अन्तर्गत इन नृत्यों को लिया जा सकता है– केसरिया पगड़ी, हमीर हठ, दुर्गादास, अमरसिंह राठौड़ आदि। इन कथा–नकों के आधार पर इतिहास के साथ–साथ बालक को भौगोलिक ज्ञान भी होता है और उस समय के रहन–सहन, वेश--भूषा, राज्य--व्यवस्था आदि की जानकारी कराई जा सकती है।

सामाजिक कथानक :—

हम समाज में रहते हैं। समाज के साथ हमारा सभी प्रकार का सम्बन्ध है। इससे पृथक् मानव एकाकी रूप में नहीं रह सकता। अतः सामाजिक जीवन का ज्ञान बालक के लिए अति आवश्यक है। सामाजिक जीवन की झाँकियों का प्रदर्शन नृत्य द्वारा किया जा सकता है। जिनके आधार पर भौगोलिक ज्ञान भी दिया जा सकता है। ऐसे नृत्यों में अनेक नृत्य--नाटिकाएँ समाज के सम्मुख प्रस्तुत भी की जा चुकी हैं जैसे 'मशीन और मानव', 'हरियाला भारत', 'नहरों का विकास', 'श्रम ही जीवन है' आदि आदि।

रंगमंच ऐसा साधन है, जिसके द्वारा सभी युगों का सजीव स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके माध्यम से सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि सभी बातों का सम्पूर्ण चित्र दिखाया जा सकता है। अतः बालक को भौगोलिक ज्ञान कराने के लिए रंगमंच बहुत ही उपयुक्त साधन है, अगर इसका उपयोग कोई करना जाने या कर सके।

भूगोल की शिक्षा के लिए संसार का गोलक (ग्लोब) काम में लिया जाता है। इसके द्वारा पृथ्वी की जानकारी दी जाती है। परन्तु रंगमंच पर कथानक के आधार पर ...यों को बनाना पड़ता है ताकि कला-प्रदर्शन का प्रभाव दर्शकों पर पड़े। इन सबसे बालक प्राकृतिक भूगोल का ज्ञान आसानी से प्राप्त कर सकता है।

नृत्य में घुंघरुओं का प्रयोग अनिवार्य है। घुंघरू किसी न किसी धातु से बने होते हैं और इन धातुओं का स्थान पृथ्वी है। नृत्य की शिक्षा के साथ अगर इन धातुओं की जानकारी भी दे दी जाये तो हमारा भूगोल-शिक्षा का उद्देश्य भी सम्पन्न हो जाता है। नृत्य द्वारा मनोरंजन करने के साथ-साथ अगर बालक उससे सम्बन्धित वस्तुओं का ज्ञान भी कर लेता है तो उसके विकास में वृद्धि ही होगी। इसी प्रकार नृत्य के साथ बजने वाले वाद्य-यन्त्रों की बनावट, उनको बनाने सम्बन्धी जानकारी तथा अन्य आवश्यक बातें भी सिखाना आवश्यक है। नृत्य की कक्षा में उन पेड़ों का ज्ञान जिनसे बाँसुरी, तबला, सारंगी, सितार आदि वाद्य बनते हैं, करवाना उचित है।

नृत्यकला में वेशभूषा के माध्यम से मानव के दैनिक जीवन की जानकारी दी जानी चाहिये। इससे बालक मानव के रहन-सहन आदि का ज्ञान प्राप्त करता है। अन्य देशों की वेशभूषा की जानकारी के लिये उन देशों के कार्यक्रमों द्वारा वहाँ की सभ्यता

तथा उनके जीवन से बालक को आसानी से परिचित करवाया जा सकता है। नृत्य के द्वारा शिक्षा देने से विषय रोचक तथा सुगम बन जाता है और बालक इसके माध्यम से बहुत-सी बातें नाचते खेलते सीख लेता है।

कला का क्षेत्र विस्तृत है। नक़्शों के माध्यम से बालक को पहाड़, नदी, सागर, शहर, गांव आदि की जानकारी देते हैं। नृत्य कला के लिये भी इनका उपयोग किया जा कर उक्त ज्ञान को अधिक विस्तृत बनाना है। नक़्शों से नृत्य के भेद समझा सकते हैं - जैसे राजस्थान का घूमर, पंजाब का भंगड़ा, आसाम का मणिपुरी, दक्षिण भारत का भरतनाट्यम् आदि की जानकारी देते हुए उनके स्थान वेशभूषा आदि की जानकारी भी दी जानी चाहिए। विभिन्न प्रान्तों की कला--सस्थाएँ, कलाकार, वाद्ययंत्रों की जानकारी नक़्शों में चित्रों सहित दी जाने पर विषय अधिक आकर्षक बन जाता है।

इतिहास शिक्षा

संगीत के क्षेत्र में इतिहास का भी महत्व है। संगीत का प्रायोगिक पक्ष ही मुख्य माना जाता है, सैद्धान्तिक पक्ष में आज का कला-विद्यार्थी संगीत परीक्षाओं के प्रश्नपत्रों तक ही ध्यान रखता है। संगीत संबंधी कहानी--किस्से, जो व्यक्ति विशेष से संबधित हैं, वही उसका इतिहास है। परन्तु इतने से इतिहास को जानकारी कर लेना विषय को गम्भीरता से पृथक् करना है।

कला का इतिहास मानव जीवन से पूर्णतया संबंधित है। कलाकार जो भी कुछ प्रस्तुत करता है, वह सब ऐतिहासिक है। मानव की उत्पति के साथ साथ कला उत्पति हुई। मानव के विकास के साथ ही कला का विकास होता ग और इन दोनों का इतिहास बनता गया। समय के परिवर्त के साथ कला क्षेत्र में भी उतार--चढ़ाव आए, जिनको मानव ने एकत्रि किया। उनके बारे में खोज की, विचार किया और वही सामग्री ऐतिहासिक हुई। किस युग में कला का स्वरूप क्या था उसका सामाजिक--राजनैतिक स्वरूप क्या था, यही सब ज्ञान हमें इतिहास देता है। इतिहास के द्वारा भूतकाल की जानका कर वर्तमान को सुन्दर बनाने का प्रयास किया जाता है। संगीत के किस्से-कहानि को सिर्फ मनोरंजन की वस्तु न समझ कर उनके द्वारा गूढ़ तथ्य निकालना चाहिए तभी कला के इतिहास का महत्व है।

आज का संगीत व नृत्यकला का विद्यार्थी इतिहास इसलिए पढ़ता है

उसे परीक्षा में प्रश्नों के उत्तर देने हैं। परीक्षा उत्तीर्ण करने तक ही
संगीत का इतिहास उसके लिए उपयोगी है, उसके बाद उसके जीवन में इसका कोई
महत्व नहीं है। इसका कारण यह है कि छात्र का संगीत विषयक पाठ्यक्रम दोष पूर्ण
है। कला-शिक्षक स्वयं इतिहास के महत्व को न समझने के कारण इस विषय पर
ध्यान ही नहीं देते। उनका मुख्य ध्येय 'बड़े ख्याल' गले में जमा देना मात्र है। ये बड़े-
ख्याल, जिनके माध्यम से वह कला-शिक्षक बना है, उसका भी अपना इतिहास है।
इस बात को वह सही रूप में नहीं जानता। अगर इसका भी ज्ञान स्वयं शिक्षक को
होता तो उसे इतिहास-शिक्षा के महत्व का पता लगता। आज के शास्त्रीय संगीत-नृत्य
में जो कुछ हम कर रहे हैं, वह सब मुगलकाल की देन है। मुगलकाल की गायन शैली
के साथ आज का कलाकार इतना बन्ध चुका है कि उसमें वह जरा भी परिवर्तन सहन
नहीं कर सकता। यह हम जानते हैं कि संगीत शास्त्र इतना ही नहीं है। इसका संबंध
जब हम शंकर-पार्वती से मानते हैं तो हम प्राचीन इतिहास से संबंधित हो जाते हैं।
इस प्रकार जाने अनजाने इतिहास को परे नहीं किया जा सकता। बिना ऐतिहासिक
ज्ञान के केवल वर्तमान का कोई महत्व नहीं रह जाता। जब इसका इतना महत्व है
तो इस विषय की शिक्षा अच्छी प्रकार से ही ग्रहण की जानी उचित है।

संगीत का प्रायोगिक-पक्ष मानव के मनोरंजन तक ही रह जाने के रण
इस विषय का सुव्यवस्थित इतिहास नहीं बन पाया। कलाकार, जिनका संबंध व्यक्ति
विशेष तक ही रहा, उनकी शिक्षा नहीं के समान थी और उनका इतिहास भी व्यक्ति
तक ही सीमित रह गया। कलाकार के लेखन-कला से अनभिज्ञ होने के कारण कला
के क्षेत्र में 'घटनावाद' प्रारम्भ हुआ। कला को मौखिक रूप से ही विद्यार्थी के कण्ठों
में उतार देना कलाकार की शिक्षा का ध्येय रहा। समाज के सामने वही कला आई
जो पीढ़ी दर पीढ़ी मुगलकाल से चली आ रही थी। आज के वैज्ञानिक युग में इसमें
बहुत संशोधन की आवश्यकता है।

मुगलकालीन संगीत का संबंध राजा-महाराजा और रईसों आदि के मनो-
रंजनार्थ था। इसी से संगीत का इतिहास व्यक्ति विशेष से संबंधित रहा। आधुनिक
युग में कला का क्षेत्र मुख्य रूप से शिक्षण संस्थाएँ हैं जहां सामूहिक शिक्षा की
व्यवस्था होती है। इसकी पूर्ति में आज का कला-शिक्षक पूरा नहीं उतरता क्योंकि
हमारे संगीत-शिक्षण में सामूहिक शिक्षा-प्रणाली नहीं रही। इस क्षेत्र में जो कुछ
शिक्षा-विधि अपनाई गई है, वह दोष पूर्ण है। युग की आवश्यकता के अनुसार इस
क्षेत्र में भी सत्य की खोज होनी चाहिए। अपढ़ कलाकारों की मौखिक बातों पर

विश्वास कर लेने से हम कला के मुख्य ध्येय से दूर हो जाते हैं। आज के पाठ्यक्रम में इतिहास के नाम पर कलाकारों की जीवनी मात्र पढ़ाई जाती है, जिसमें सिवाय उनकी गायन-शैली की प्रशंसा के और कुछ नहीं रहता। इस प्रकार के शिक्षण से कोई तथ्य नहीं निकलता। संगीत के इस प्रकार के ऐतिहासिक ज्ञान से कोई लाभ नहीं। युग की आवश्यकतानुसार हमें विचार करना है कि आज की सामूहिक शिक्षण-विधि में संगीत के माध्यम से इतिहास का शिक्षण कैसे हो ?

नृत्य व संगीत का इतिहास बहुत प्राचीन है। मानव की उत्पति के साथ ही संगीत की उत्पति मानी गई है। मानव जीवन से संबंधित इस कला का इतिहास भी मानव के विकास के साथ साथ बनता गया है। स्वतन्त्रता के इस युग में मानव ने वैज्ञानिक साधनों द्वारा काफी उन्नति करली है और करता ही जा रहा है। किन्तु कला का क्षेत्र अभी मुगल-दरबारों में ही पड़ा सिसक रहा है। कला क्षेत्र का नेतृत्व कलाकार के हाथ में है और कलाकार अशिक्षित होने के कारण उसका विकास करने में असमर्थ है। अतः शास्त्रीय संगीत का विकास रुका हुआ है। शिक्षण-संस्थाओं में संगीत विषय अवश्य है किन्तु वहां वह भार सा ही विदित होता है।

इतिहास की शिक्षा देने के लिए नृत्य कला का उसके साथ समन्वय आसानी से किया जा सकता है। मुगलकालीन इतिहास का बहुत बड़ा अंश महलों की पायल व घुंघरुओं की झंकार पर ही आधारित है। इन्हीं झंकारों के कारण कई लड़ाइयां लड़ी गई, जिनका मुख्य कारण महलों में बजने वाली पायलों की झंकार रही है। इतिहास के लेखकों ने इन झंकारों को गौण रखा और तलवारों की खनखनाहट को ही आगे बढ़ाया। ये तलवारें उन झंकारों की रक्षा के लिए उठी थीं। इतिहास की घटनाओं में इन झंकारों को गौण नहीं किया जा सकता।

नृत्य पद्धति से लाभ :—

(१) इस पद्धति से बालक की शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का विकास होगा।

(२) बालक इतिहास की कठिन से कठिन घटना को सुगमता से समझ सकेगा।

(३) बालकों में आपस में बन्धुत्व की भावना जागृत होगी।

(४) बालक नृत्यकला का ज्ञान प्राप्त करेगा तथा उसमें आत्मभाव-प्रदर्शन की क्षमता आएगी।

साधन

(१) नृत्य-नाटिका :— आधुनिक युग में कत्थक-नृत्य का प्रचार उत्तर भारत में विशेष रूप से प्रचलित है। कत्थक का ऐतिहासिक सम्बंध कृष्ण के रास-नृत्य से मानते हैं। वाजिदअली के दरबार में कत्थक का विकास सर्वाधिक हुआ। कृष्ण की लीलाओं संबधी जानकारी नृत्य-नाटिकाओं के माध्यम से बालकों को आसानी से दी जा सकती हैं। जैसे-चीरहरण, गीतोपदेश आदि। कत्थक में जिन तोड़ों, टुकड़ों और परनों आदि का प्रयोग किया जाता है, इनमें बहुत सी बन्दिशें कथानकों पर आधारित होती हैं। जैसे-अहिल्या-उद्धार, राम--बनवास, केवट--सवाद, लकादहन आदि। इनसे रामकथा का भी ज्ञान प्राप्त होगा।

(२) वाद्ययंत्र :— वाद्ययंत्र बजने से ही नर्तक के पांव थिरकते हैं। बिना धुन एवं लय के नृत्य नहीं हो सकता। वाद्ययंत्रों का अपना अलग इति-हास है। प्राचीन काल की वीणाएं जैसे-रावण वीणा, सरस्वती वीणा, नारदीय वीणा, कात्यायनी वीणा आदि के बनाने वाले एवं बजाने वाले दोनों ही हमारे इतिहास के पात्र हैं, जिनको कलाकार के रूप में जानना आवश्यक है। जब हम उनके जीवन के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करेंगे तो उनको स्पष्ट रूप से इतिहास के पात्रों के रूप में देखेंगे।

(३) वेशभूषा :— बिना वेशभूषा के नृत्य का प्रदर्शन सुन्दर व आकर्षक नहीं होता। नृत्य का पात्र ऐतिहासिक घटनाओं को प्रस्तुत करता है। जब तक उसे उक्त युग की सही जानकारी नहीं होगी, तब तक उस घटना का प्रदर्शन असफल ही रहेगा। वेशभूषा का ज्ञान हमें इतिहास के युग विशेष की रहन-सहन का बोध कराता है। पुस्तकों में हम उनके बारे में केवल पढ़ सकते हैं किन्तु नृत्य में हम उस युग को सजीव पाते हैं। अतः वेशभूषा के द्वारा नृत्य-शिक्षा इतिहास के ज्ञान को अधिक दृढ़ बनाती है।

(४) कलाकारों का जीवन परिचय :— वैदिक काल में नृत्य आत्मशांति एवं भगवत् प्राप्ति हेतु किया जाता था। धीरे धीरे इसका स्वरूप शृंगार प्रधान हो गया और इसका उद्देश्य मनोरंजन मात्र रह गया। मुगलकाल में इसका स्तर इतना अधिक गिर गया कि समाज ने इस विषय का एक प्रकार से वहिष्कार ही कर दिया। अंग्रेजी राज्य में भी नृत्य एवं संगीत का क्षेत्र बहुत ही संकुचित रहा, अतः इसका विकास नहीं हो सका। स्वतन्त्रता के साथ कला में जागृति आई और आज इस विषय को उच्च से उच्च स्थान प्राप्त हो गया है। इस प्रकार कला के इतिहास की संक्षिप्त जानकारी भी हमें इतिहास का ज्ञान कराती है। इसके साथ ही जिन कलाकारों की अभूतपूर्व साधना रही है, वे हमें कला के इतिहास की अच्छी सामग्री देते हैं।

शिव का ताण्डव, पार्वती का लास्य, मेनका, उर्वशी आदि के नृत्य से इतिहासकी जानकारी मिलती है। इसी प्रकार, बड़े बड़े ऋषि-महर्षियों की साधना से नृत्य का इतिहास बढ़ता ही गया।

आज हम जिस युग से गुजर रहे हैं, उसके कलाकारों का इतिहास सामने है। इन कलाकारों का जीवन परिचय प्ररणा देते हुए ऐतिहासिक पक्ष को मजबूत बनाता है। जिन कलाकारों की जीवनियां हमारे सामने हैं, उनका इतिहास के साथ इस प्रकार का समन्वय कर दिया जावे कि शिक्षा के क्षेत्र में इसका समुचित उपयोग हो सके। बालक को तानसेन की जीवनी के साथ अकबर के इतिहास की जानकारी भी दी जावे तो कला और इतिहास दोनों का सुन्दर समिश्रण हो सकेगा और बालक दोनों ही विषयों के ज्ञान को अधिक सुगमतापूर्वक ग्रहण कर लेगा।
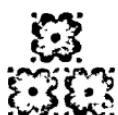
शिक्षाप्रद नृत्य-नाटिकाएं

नृत्य कई प्रकार के होते हैं। नृत्य देखने की इच्छा सभी व्यक्तियों को रहती है। ...नों को नृत्य करने की भावना होने के कारण वे किसी न किसी रूप में नृत्य भी करते हैं। यहां हम कुछ शिक्षाप्रद नृत्य-नाटिकाओं के नमूने प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनके द्वारा भूगोल, भाषा, इतिहास एवं गणित की शिक्षा सुगमता से दी जा सकती है।

(१) चन्द्रग्रहण-नृत्य

रंगमंच :— पर्दा-हल्का नीला, बादलों का दृश्य,
रोशनी सफेद, लाल व नीली।

पात्र :— पृथ्वी (स्त्री), चन्द्रमा (बालक) सूर्य (पुरुष)।

वेशभूषा :— पृथ्वी :— बसंती रंग की साड़ी व ब्लाउज,
खुले बाल, फूलों का शृंगार, शांत प्रकृति (वात्सल्य)।

चन्द्रमा :— सफेद वस्त्र, सफेद पुष्पों का शृंगार,
मुकुट (चन्द्रिका), कुंडल, चपल प्रकृति।

सूर्य :— लाल वस्त्र, मुकुट (किरणनुमा-चक्र),
बाजूबंद, स्वर्ण

— : लहरा : —

ताल–कहरवा (मध्यलय)

सा रे नि़ सा	म ग म ऽ	ध प ध नि़	ध ऽ ऽ ऽ
×	0	×	0
ध नि़ सां नि	सां ऽ ऽ ऽ	नि़ ध प ऽ	प ध नि़ ऽ
×	0	×	0
ध नि़ सां नि	सां ऽ ऽ ऽ	ध प म ग	म ऽ ऽ ऽ
×	0	×	0
म प म ग	ग़ म ग़ रे	रे ग़ रे नि़	सा ऽ ऽ ऽ
×	0	×	0

नृत्य–प्रदर्शन

पद संचालन	भाव--भंगिमा
थेई ता थेई तक ×	पृथ्वी अपनी धुरी पर घूम रही है तथा आकाश मण्डल का भी चक्कर लगाती है।
	चन्द्रमा का प्रकट होना। मां, मैं भी इस आकाश मण्डल में खेल लूं। हां खेलो किन्तु दूर नहीं जाना। नहीं मैं दूर नहीं जाऊंगा।
ततृतत् थेई ततृतत् थेई ×	चन्द्रमा का बढ़ना, पृथ्वी का अपनी गति से नृत्य करना।

तिग तिगद. थेई ऽ
X

सूर्य का प्रकट होना। आकाश मण्डल में मेरा साम्राज्य है, मेरी आज्ञा के बिना कौन विचरण कर रहा है।

तिर तर थेई ता
X

पृथ्वी:– देव यह तो बालक है, बालक पर क्रोध नहीं करिये। सूर्य :– चुप रहो, मैं यह सहन किसी भी हालत में नहीं कर सकता।

ततूतत् थेई ततूतत् थेई
X

चन्द्रमा अपनी धुन में है, सूर्य की उसे कोई चिन्ता नहीं है। किन्तु पृथ्वी परेशान है।

तिगदा दिगदिग थेई ऽ
X

चन्दा इधर आओ, यहां बहुत बड़े बड़े ग्रह तथा उपग्रह हैं वे तुम्हें नहीं खेलने नहीं देंगे, आओ, शीघ्र ही दौड़ कर आ जाओ। आ रहा हूं अम्मा चिन्ता न करो।

धाकिट तकथुम किटतक धिता
X

थेई तत् थेई तत्
X

सूर्य :– रुक जाओ। क्रोधित होना, चन्द्रमा की ओर बढ़ना, मारने के भाव, पृथ्वी परेशान है, चन्द्रमा घबरा जाता है।

ताथेई थेईतत् आथेई थेईतत्
X

पृथ्वी :– क्षमा करो बालक है, भविष्य में यहां नहीं आयेगा।

ताक तूना थेईतत् थेई
X

सूर्य :– हट जाओ मैं इसे समाप्त करूंगा। मारने की मुद्रा, पृथ्वी दौड़ कर चन्द्रमा के आगे आ जाती है, आंचल से छुपाना चन्द्रमा के चहरे पर आधी दूर पर परछाई पड़ना, सूर्य का रुक जाना, चन्द्रमा छुप छुप कर सूर्य को देख रहा है। चन्द्रग्रहण की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

(पर्दा गिर जाता है।)

इस नृत्य में सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा की गति का ज्ञान किया जाता है। चन्द्र-ग्रहण कैसे होता है, यह जानकारी भी दी गई है। यह नृत्य परीक्षण के तौर पर बालकों द्वारा करवाया जा चुका है इस शिक्षाप्रद नृत्य की सराहना सभी दर्शकों द्वारा की गई। भौगोलिक ज्ञान का सजीव चित्रण इस नृत्य में मिलता है।

(२) सीताहरण–नृत्य

रंगमंच :— पंचवटी का दृश्य, रोशनी सफेद, हरी लाल व नीली।

पात्र :— राम, लक्ष्मण, सीता, मारीच एवं रावण।

वेशभूषा :— राम, लक्ष्मण – बनवासी वस्त्र, तीर कमान, फूलों का शृंगार।
सीता – हल्के पीले वस्त्र, सफेद फूलों का शृंगार।
मारीच – मृग के रूप में।
रावण – सन्यासी वस्त्राभूषण और अन्त में राजषि पौशाक।

–:चौपाई की धुन:–

ताल - कहरवा (मध्यलय)

ऽ नि नि नि	सां ऽ नि॒ध प	पनि॒ धप मग रेग	नि॒सा रेग रेग मप
×	×	×	×
मग रेग सानि॒ सा	ऽ रें रे रे	रे ग म प	मऽ मग रेग सा
×	×	×	×
नि॒सा रेग रेग मप	मग रेग सानि॒ सा		
×	×		

यह नृत्य श्री रामचरितमानस की चौपाईयों पर किया जाएगा। चौपाई रंग-मंच के पीछे से गाई जाएगी तथा कथानक रंगमंच पर प्रदर्शित किया जाएगा। इस नृत्य का उद्देश्य साहित्य ज्ञान कराना है।

नृत्य-प्रदर्शन

चौपाई :—

चले राम मुनि आयसु पाई, तुरत हिं पंचवटी निअराई ।
जब ते राम कीन्ह तहँ बासा, सुखी भए मुनि बीती त्रासा ।
सो बन बरनि न सक अहिराजा, जहां प्रगट रघुबीर बिराजा

पदसंचालन :—

ता थेई तत् थेई
X

भाव :—

राम, सीता, लक्ष्मण का 'पताका' मुद्रा मे प्रवेश । पंचवटी मे विश्राम करना, सीता स्थान का निरीक्षण करती है। फूल चुनना, माला बनाना, स्थान सजाना । राम, लक्ष्मण विश्राम करते हैं ।

चौपाई :—

तेहि बन निकट दसानन गयऊ, तब मारीच कपट मृग भयऊ ।
सुनहु देव रघुबीर कृपाला, यहि मृग कर अति सुन्दर छाला ।
सत्यसंध प्रभु बधिकर एही, आनहु चरम कहति बैदेही ।

पदसंचालन :—

धि तक थेई ता
X

भाव :—

सीता स्वर्णमृग को देखती है तथा इसके चर्म को लाने के भाव प्रकट करती है ।
(व्याकुलता के भाव प्रदर्शन)

चौपाई :—

मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा, करतल चाप रुचिर सर साँधा ।

पदसंचालन —

ततत् थेई ततत् थेई
X

भाव :—

मृग का इधर-उधर भागना
सीता का मृग को मारने इशारा करना
उसे मार लाने का संकेत करना । राम
को समझाते है ।

इस नृत्य में सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा की गति का ज्ञान किया जाता है। चन्द्र-ग्रहण कैसे होता है, यह जानकारी भी दी गई है। यह नृत्य परीक्षण के तौर पर बालकों द्वारा करवाया जा चुका है इस शिक्षाप्रद नृत्य की सराहना सभी दर्शकों द्वारा की गई। भौगोलिक ज्ञान का सजीव चित्रण इस नृत्य में मिलता है।

(२) सीताहरण–नृत्य

रंगमंच :— पंचवटी का दृश्य, रोशनी सफेद, हरी लाल व नीली।

पात्र :– राम, लक्ष्मण, सीता, मारीच एवं रावण।

वेशभूषा :— राम, लक्ष्मण – बनवासी वस्त्र, तीर कमान, फूलों का शृंगार।
सीता – हल्के पीले वस्त्र, सफेद फूलों का शृंगार।
मारीच – मृग के रूप में।
रावण – सन्यासी वस्त्राभूषण और अन्त में राजषि पोशाक।

–:चौपाई की धुन:–

ताल - कहरवा (मध्यलय)

ऽ नि नि नि	सां ऽ नि॒ध प	पनि॒ धप मग रेग	नि॒सा रेग रेग मप
×	×	×	×
मग रेग सानि॒ सा	ऽ रें रे रे	रे ग म प	मऽ मग रेग सा
×	×	×	×
नि॒सा रेग रेग मप	मग रेग सानि॒ सा		
×	×		

यह नृत्य श्री रामचरितमानस की चौपाईयों पर किया जाएगा। चौपाई रंग-मंच के पीछे से गाई जाएगी तथा कथानक रंगमंच पर प्रदर्शित किया जाएगा। इस नृत्य का उद्देश्य साहित्य ज्ञान कराना है।

नृत्य-प्रदर्शन

चौपाई :—

चले राम मुनि आयसु पाई, तुरत हि पंचवटी नियराई।
जब ते राम कीन्ह तहँ बासा, सुखी भए मुनि बीती त्रासा।
सो बन बरनि न सक अहिराजा, जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा।

पदसंचालन :—	भाव :—
ता थेई तत् थेई X	राम, सीता, लक्ष्मण का 'पताका' मुद्रा में प्रवेश। पंचवटी में विश्राम करना, सीता स्थान का निरीक्षण करती है। फूल चुनना, माला बनाना, स्थान सजाना। राम, लक्ष्मण विश्राम करते हैं।

चौपाई :—

तेहि बन निकट दसानन गयऊ, तब मारीच कपट मृग भयऊ।
सुनहु देव रघुबीर कृपाला, यहि मृग कर अति सुन्दर छाला।
सत्यसंध प्रभु बधिकर एही, आनहु चरम कहति बैदेही।

पदसंचालन :—	भाव :—
धि तक थेई ता X	सीता स्वर्णमृग को देखती है तथा इसके चर्म को लाने के भाव प्रकट करती है। (व्याकुलता के भाव प्रदर्शन)

चौपाई :—

मृग बिलोकि कटि परिकर बांधा, करतल चाप रुचिर सर सांधा।

पदसंचालन :—	भाव :—
तत्तत् थेइ तत्तत् थेई X	मृग का इधर-उधर भागना और सीता का मृग की तरफ इशारा करना तथा उसे मार लाने का संकेत करना। राम सीता को समझाते हैं।

:— नृत्य-प्रदर्शन —:

पद-संचालन	भाव
ताक तून्ना तक थेई	(सभी क्रियाएं नृत्यमय होंगी)
×	चार बालकों का प्रवेश, आओ श्रमदान करें।
	रंगमंच पर नाचते हुए चक्कर लगाना।
तक थेई तक थेई	आगे बढ़ो, सफाई करो, मिट्टी खोदो।
×	अपने अपने फावड़े व परातें लाओ।
ता थेई तत् थेई	मिट्टी खोदो, भरो परात, परात उठाओ।
×	सड़क पर डालो, सड़क जमाओ।
धीता तूम थेई ऽ	गुरुजी आ गये, (शिक्षक का प्रवेश)
×	नमस्कार, खुश रहो।
धीता थेई थेई ऽ	किसने कितना काम किया ? सच बताना
×	
तिगदा तकतक तिगदा तकतक	प्रत्येक ने १०–१० परात मिट्टी डाली।
×	कुल कितनी परात मिट्टी डाली गई ?
तत् तत् थेई ऽ	चालीस परातें।
×	
धाती नक धाती नाड़ा :	१० दिन काम और करो तब कितनी परातें
×	डालोगे। सोचते हैं, चार सौ।
नाती नक नाती धीन	शाबास, आज की छुट्टी।
×	
ताक तून्ना तक थेई	आओ श्रमदान करें. भावों द्वारा नृत्य करते
×	हुए प्रस्थान कर जाते हैं।
	शिक्षक दूसरी तरफ जाता है।

स्पष्टीकरण

नृत्य के प्रत्येक बोल कई बार लिये जायेंगे। इन्हीं पद संचालन पर पूरे भाव प्रदर्शन करें।

इस नृत्य द्वारा गणित का लाभ उठाया तथा श्रमदान की भावना से देश का निर्माण कार्य किया।

सहायक ग्रन्थों की सूची :—

१. शिक्षा-शास्त्र के मूल तत्व (भाग १, २) — प्रो० मुनेश्वर प्रसाद
२. मनोविज्ञान और शिक्षा-शास्त्र — श्री भैरवनाथ झा
३. शिक्षा-शास्त्र — श्री सीताराम जायसवाल
४. बाल विकास और शिक्षा — " "
५. नवीन शिक्षा मनोविज्ञान — " "
६. शिक्षा के सिद्धान्त तथा
   शिक्षा में आधुनिक प्रगति — श्री श्याम चरण
७. शिक्षा और शिक्षण सिद्धान्त — श्री मदनलाल जैन
८. शिक्षा में क्रियात्मक अनुसंधान — श्री ओम प्रकाश गुप्ता
९. संगीत-शिक्षण शास्त्र — डा० नि सोमानी त्रिपाठी
१०. संगीत विषयों के पाठों की टीकाएँ — श्री रामचन्द्र नाईक
११. ध्वनि और संगीत — डा० ललितकिशोरसिंह
१२. नृत्य भारती — आचार्य सुधाकर
१३. घुंघरू के बोल — डा० जयचन्द्र शर्मा
१४. नाट्य-पद्धति द्वारा शिक्षण — श्री चन्द्रशेखर भट्ट
१५. नया शिक्षक (त्रैमासिक) राजस्थान शिक्षा विभाग, बीकानेर
१६. संगीत (त्रैमासिक) संगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)
१७. कलानुसंधान पत्रिका (त्रैमासिक) श्री संगीत भारती, शोध विभाग, बीकानेर